धर्मायण

अंक 139
माघ,
2080 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

सन्त-साहित्य विशेषांक

बन्दहुँ सब सन्तन के चरणा

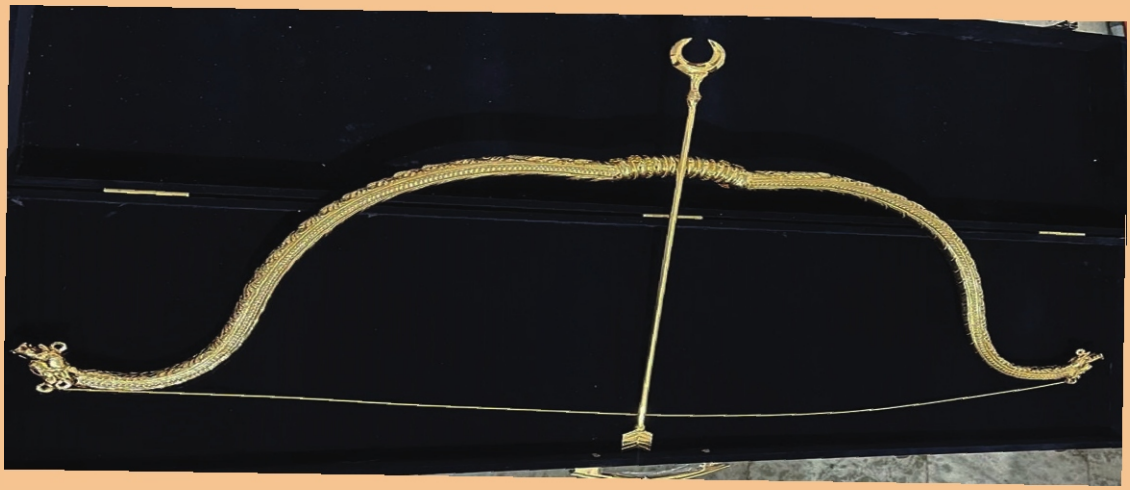

अयोध्या के अमावा राम मन्दिर की ओर से सोने का तीर-धनुष विशेष समाचार पृ. 75 पर

धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. **सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई के हस्तलेख** 3
   - सम्पादकीय
2. **सन्त साहित्य में सनातन धर्म** - श्री राधा किशोर झा 7
3. **सौराष्ट्र के सन्तों द्वारा सामाजिक-सद्भावना का सन्देश**
   - डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि' 18
4. **मानवेतर योनि के सन्त** - विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक 31
5. **नाथ योगियों की लोकपरम्पराऔर उनका अवदान**
   - डॉ. विभा ठाकुर 38
6. **सन्त तुकाराम की ईश्वरीय अवधारणा**
   - श्री संजय गोस्वामी 45
7. **प्रेमानुरागी सुन्दर कुंवरि** - आयुष्मती शैरिल शर्मा 56
8. सन्तकवि भवानाथ झा प्रसिद्ध भोमर झा
   - श्री विनोद कुमार झा 59
9. **कबीरपन्थ के सन्त कवि घरभरन झा** - श्री रमण दत्त झा 62
10. **भगवान श्रीकृष्ण के भक्त कवि रसखान**
    - डा. राजेन्द्र राज 64
11. **सिया राम मय सब जग जानी** - डॉ. अजय शुक्ला 67
12. **भगवान श्रीराम द्वारा अपना विराट् स्वरूप दिखाना**
    -डॉ. शारदा मेहता 71

महावीर मन्दिर समाचार, जनवरी, 2024ई. 75

अन्य स्थायी स्तम्भ 79

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 139
माघ, 2080 वि. सं.
26 जनवरी-24फरवरी 2024ई.

सम्पादक
भवनाथ झा

पत्राचार :
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन: 0612-2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:
dharmayanhindi@gmail.com
Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 138, पौष, 2080 वि.सं.

विद्वद्वरेण्य सम्पादक महोदय की उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के लिए सादर प्रणाम। सच तो यह है कि आपके द्वारा सम्पादित धर्मायण भारतीय सनातन शास्त्रीय परम्परा की गौरवपूर्ण शोध-पत्रिका है। इसमें प्रकाशित सारे आलेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक होते हैं। जिन लेखकों के आलेख प्रकाशित होते हैं, वे तो विद्वान् हैं ही, सबसे बड़ी बात यह है कि आपका सम्पादकीय दाक्षिण्य भी अप्रतिम है। आपकी सहजता, सरलता और सम्पादकीय गम्भीरता के साथ शास्त्रीय प्रज्ञामयता अनुपम है। आपके व्यक्तित्व, कर्तृत्व और वक्तृत्व असाधारण हैं। आप सचमुच वरेण्य हैं। आपके सम्पादन में आलेख का प्रकाशन विद्वानों को गौरवान्वित करता है। धर्मायण में आलेख का प्रकाशन विद्वत्ता की मर्यादा है। आपकी प्रज्ञाशीलता और श्रमशीलता को शत-शत नमन।

मैं धर्मायण के पीडीएफ को ह्वाट्सप के माध्यम से सहस्राधिक लोगों को प्रेषित करता हूँ। उसे देखकर विद्वान् बड़े प्रभावित होते हैं। निःसन्देह यह पत्रिका भारतीय आर्ष परम्परा को गौरवान्वित कर रही है।इसमें आपकी महनीय भूमिका है। सादर।

राधानंद सिंह, पुणे 6/1/2024

इस अंक की विषय वस्तु के अनुकूल ही आपने प्रस्तावना में संपादकीय दिया है और श्रीमद्भगवद्गीता से अपने ध्येय को पुष्ट किया है, सच में गीता लोकधर्म को पुष्ट करती है और मर्यादा की रक्षा भी। अन्य देवी देवताओं के लेख विद्वानों ने बहुत शोध के साथ लिखे हैं।

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.– +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

धर्मायण का अग्रिम अंक **फाल्गुन मास** का होगा। अनेक पाठकों ने एक अंक यात्रा-संस्मरण विशेषांक के रूप में देने का प्रस्ताव दिया है। जीवन में धार्मिक यात्राओं के क्रम में अनेक बार अलौकिक घटना का अनुभव करते हैं। वे उन तीर्थस्थानों पर भी घट सकती है या मार्ग में भी हो सकती हैं। ऐसी घटनाएँ हमारे मानस पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है, जिसे हम भूल नहीं पाते हैं। उन अनुभूतियों को यदि हम लिपिबद्ध करते हैं तो वह अत्यधिक पठनीय बन जाता है। हमें आशाहै कि हमारे लेखक इसमें सहयोग करेंगे।

विस्तार से– पृ. 70 पर

राजस्थान की गणगौर के लिए लेखक ने लिखा है कि गणेश सहित गौर... ऐसा नहीं है। गणगौर में ईसर (शिव) और गणगौर (पार्वती) हैं और इनकी गांव गांव सवारी निकाली जाती है।

अंक की सामग्री पठनीय लग रही है और मन को बांध रही है, मैं खुद फाइल को तीन बार खोल चुका हूं। लोक देवताओं के विषय में पढ़ना बहुत रोचक है। इसे आगे बढ़ना होगा। आपके प्रयास और संकल्प को प्रणाम।

श्रीकृष्ण 'जुगनू'

सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई के हस्तलेख

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

19वीं शती में मिथिला के पूर्वी भूभाग में सन्त लक्ष्मीपति अर्थात् बाबाजी लक्ष्मीनाथ गोसाँई ऐसे सन्त थे, जिन्होंने लोकभाषा में रचे भक्ति-गीतों के माध्यम से समाज को एक सूत्र में बाँधकर रखने का कार्य किया। सनातन धर्म की यह लोक-परम्परा थी, जो शास्त्रीय परम्परा के समानान्तर लोकोन्मुखी होकर बह रही थी। अतीत में कभी यही कार्य गुरु गोरखनाथ ने किया था, सरहपाद आदि सिद्ध सन्तों ने किया था। मध्यकाल में रामोपासना की परम्परा में आचार्य रामानन्द ने किया और उनके बारह शिष्यों- कबीर, रैदास, धना, पीपा, पद्मावती आदि सन्तों ने समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचने के लिए लोकभाषा को अपनाया। दक्षिण के बसवन्ना, गोदा आण्डाल, अल्लामा प्रभु, तिरुवळ्ळुवर, मराठी के लोकनाथ, समर्थ रामदास, गुजरात के नरसी भगत, राजस्थान की मीरा आदि ने इसी लोकोन्मुखी धारा की भक्ति-भागीरथी बहायी।

लगभग 16वीं शती के बाद सनातन धर्म की यह लोकोन्मुखी धारा इतनी प्रबल हुई कि प्राचीन काल से चलती आ रही देववाणी का मुख्य धारा को उसने विस्थापित कर दिया। यह समय की माँग थी, अपने लोगों को समेटकर एक सूत्र में बाँधने की अपेक्षा थी। सन्त सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास आदि कवियों ने यह कार्य व्यापक स्तर पर किया।

इस परम्परा में मिथिला में परमहंस विष्णुपुरी 15वीं शती में हुए, जिनके मैथिली गीत बंगाल, आसाम, मिथिला तथा नेपाल में भी गाये गये। जिनकी लिखी भक्तिरत्नावली का बंगला अनुवाद 1480ई. के आसपास सिलहट के राजा दिव्यसिंह ने किया तथा 1560ई. के आसपास माधवदेव ने असमिया में अनुवाद किया। बाद में मैथिल सन्त कवियों में साहेब रामदास, हकरू गोसाँई, रोहिणीदत्त गोसाँई आदि हुए। मिथिला में भी सन्त कवियों की परम्परा भारत के अन्य क्षेत्र की अपेक्षा न्यून नहीं रही है, हलाँकि इस पर और शोध करने की आवश्यकता है, अभी भी बहुत मैथिली रचनाएँ पाण्डुलिपियों में ही बंद हैं। अनेक पाण्डुलिपियों को तो मैं स्वयं देख चुका हूँ।

इस पृष्ठभूमि में जब हम बाबाजी लक्ष्मीनाथ गोसाँई का उल्लेख करते हैं तो पता चलता है कि गीतों की संख्या को ही आधार माना जाए तो बाबाजी सबसे आगे हैं। आज लगभग 1100 गीत संकलित हो चुके हैं। कुछ गीतों की पाण्डुलिपि की छाया मेरे पास भी हैं। हाल में ही इसी क्षेत्र के प्रख्यात फिल्मकार सुमित सुमन जी के सौजन्य से मुझे वनगाँव की कुटी में संकलित पाण्डुलिपियों के कुछ पत्रों की डिजिटल कापी मिली है। ये सब मिथिलाक्षर में लिखित हैं, उनके अवलोकन करने पर स्पष्ट हुआ है कि इनमें ईशावास्योपनिषद् की व्याख्या, योग विषयक तथा तान्त्रिक कर्मकाण्ड विषयक ग्रन्थ संकलित हैं। चूँकि मेरे पास कुछ ही पत्र आये हैं तो मैं इसके आधार पर कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हूँ कि ये रचनाएँ बाबाजी की हैं अथवा किसी अन्य ग्रन्थ की प्रतिलिपि है।

फिर भी इन पत्रों में से अनेक ऐसे अंश हैं जो सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई के हस्तलेख हैं, उनमें से कुछ यहाँ देखने के लिए उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत पत्र में हरिहर क्षेत्र का माहात्म्य वर्णित है। ऊपर के दो गीत हैं जिनमें हरिहर क्षेत्र चलने का आह्वान है तथा नीचे के गीत में हरिहरनाथ की स्तुति है-

प्रथम गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार है-

हरिहरक्षेत्र चलो नर तन तीरन के।
जाहाँ गजराज को काज बनायो पएदा धाए हरि॥

इसकी भनिता में लक्ष्मीपति कहते हैं-

'लक्ष्मीपति" यो देह तयागै सो हरि रूप धरी।

दूसरे गीत में कवि कहते हैं-

हरिहर रूप अनूप सोहाओन
स्याम सरीर सरोरुह लोचन पंकज पद
कर वदन रिझाओन॥

इसकी भनिता में कवि कहते हैं-

लक्ष्मीपति कवि कहाँ लगि बरनत रतिपति सोभा को लजाउन।
हरिहर क्षेत्र बनाएके रेते सुरति दोउ युग कलुस नसाओन॥

नीचे के गीत का प्रारम्भ इस प्रकार है-

हरिहरनाथ सकल सुख दाता विपति विदारण सिद्धि विधाता।

इसकी भनिता में कहा गया है-

दीनानाथ दयाल लोकहित पारबतीपति भैरव भ्राता।
लक्ष्मीपति के पुरहु मनोरथ अंतरजामी जानहु बाता॥

इस हस्तलेख की विशेषता है कि कवि ने लिखते समय अनेक स्थलों पर शब्दों को काटकर उनके स्थान पर दूसरा शब्द लिखा है। यह मूल पाण्डुलिपि की विशेषता यहाँ दृष्टिगोचर होती है।

मुझे जिन पत्रों की छाया उपलब्ध हुई है उनमें से एक अन्य पत्र में शिव की एक स्तुति इस प्रकार है-

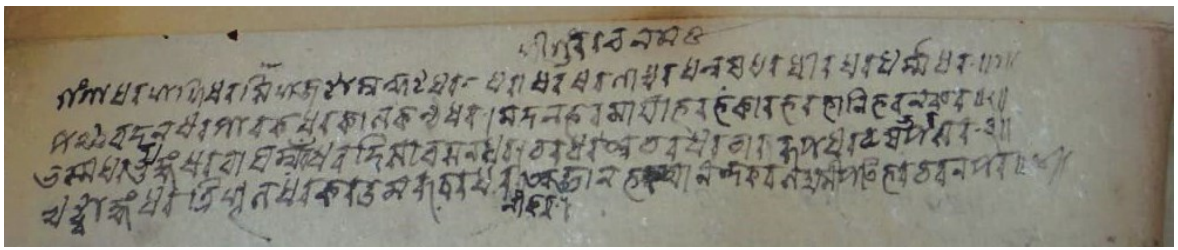

सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई की हस्तलिखित शिवस्तुति

गंगाधर शशिधर शीशजटा मुकुट धर धराधर धनुषधर धीरधर धर्मधर ॥1॥
पञ्चवदन धर पावक धर कालकण्ठ धर मदनहर मायाहर हंकारहर हानिहर नकद ॥2॥
भस्मधर भुजङ्गधर बाघम्बरधर दिसावसनधर वरधर प्रभवधर भावरूपधर वृषभ पासर ॥3॥
खट्वाङ्गधर त्रिशूलधर कर डमरुधर लोक अज्ञानहर आनन्दकर लक्ष्मीपति हरचरण पर ॥4॥

सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई की इन हस्तलिखित रचनाओं में हम तत्सम शब्दावली का सुन्दर प्रयोग देखते हैं।

इनके एक अन्य पत्र में अजपाजप का विधान उनके हाथ से लिखा हुआ मिलता है जिसमें उन्होंने गणेश, प्रजापति, गदापाणि, पिनाकी, आत्मलिङ्ग, गुरु तथा परमात्मा के नाम से जपसंख्या दी है। इसके लिए वे एक वचन का उल्लेख करते हैं-

षट्शतानि गणेशाय षट्सहस्रं प्रजापतेः।
षट्सहस्रं गदापाणेः षट्सहस्रं पिनाकिने ॥
सहस्रमात्मलिङ्गाय सहस्रं गुरवे जपेत्।
परमात्मनि साहस्रं तु सङ्कल्पविधिरेव च ॥

इसे उन्होंने संख्या के साथ इस प्रकार लिखा है-

गणेशाय— 600, प्रजापतये— 6000, गदापाणये— 6000
पिनाकिने— 6000, आत्मलिङ्गाय— 1000, गुरवे— 1000
परमात्मने— 1000= कुलयोग— **21600**

इसीके साथ मुप 4, सुप 8, सप 70, अप 72, सुप 78 अप 2 शिप 7001 भी लिखा हुआ मिलता है जो योग के साधकों के द्वारा बोधगम्य होगा।

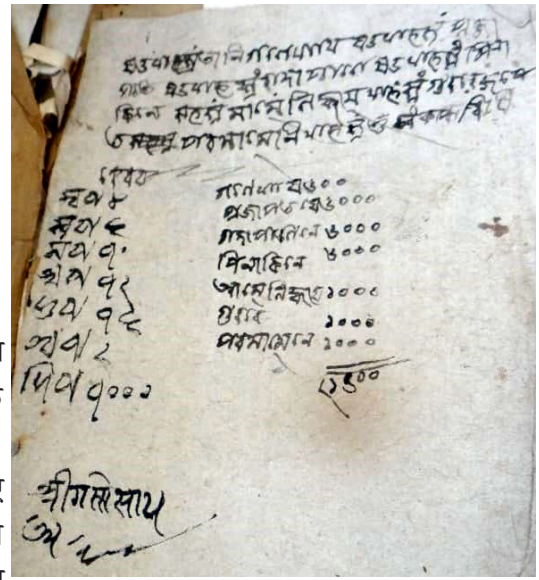

योगिराज सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई द्वारा अजपा जप की संख्या का विवरण

वास्तव में यह जप विधान अजपाजप के समर्पण के लिए है, जिसका उल्लेख सर्वदर्शनसंग्रह में माधवाचार्य ने पातञ्जलदर्शन के सन्दर्भ में किया है कि अजपाजप जब समाप्त हो जाए तब इसकी समर्पण विधि इस प्रकार होगी।

इसी प्रकार एक अन्य पत्र में गंगा की स्तुति सम्बन्धी गीत है-

जै गङ्गे जै जै सुरसरिता जै सुरसरि सुखदाई।
सुमिरत सकल सिद्धि सब जन को दुखी न जनत जाई ॥

इस लंबे गीत के अंत में भनिता है-

लक्ष्मीपति गङ्गा के महिमा वेद पुरानन गाई ॥

इस प्रकार, हमें सन्त लक्ष्मीपति के गीतों के प्रकाशित संग्रह को देखकर यह मिलान करना होगा कि इनमें से कौन कौन गीत प्रकाशित हैं। यदि ये प्रकाशित नहीं मिलते हैं तो इसका सम्पादन किया जा सकता है।

इस प्रकार, आज हमें इस स्तर से सन्त साहित्य पर कार्य करने की आवश्यकता है, जिसका यहाँ संकेत मात्र किया है।

सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई के गीतों का सम्पादन तथा संकलन भी अनेक विद्वानों ने किया है। बाबाजी के एक अंग्रेज शिष्य जॉन साहेब ने इनके गीतों का संकलन किया था। उनके देहान्त होने के बाद जॉन द्वारा सम्पादित वह प्रति लंदन चली गयी। एक बार जब डा. सुभद्र झा लंदन गये तो जॉन साहेब की पुत्रवधू ने उन्हें यह पाण्डुलिपि सौंप दी। मिथिला के श्रेष्ठ भाषावैज्ञानिक डा. झा ने इसके आधार पर दूसरी प्रति तैयार की तथा उसके अवलोकन के लिए डा. रामदेव झा को सौंप दिया। इसके बाद उसके प्रकाशन के लिए राघोपुर ड्यौढ़ी के बाबू कृष्णनन्दन सिंह ने इसके प्रकाशन का भार उठाया। बहुत दिनों तक उनके यहाँ यह पाण्डुलिपि पड़ी रही। एक दिन डा. सुभद्र झा आये और डा. रामदेव झा के पुत्र डा. शंकरदेव झा को साथ लेकर बाबू कृष्णनन्दन सिंह के दरबाजे पर अनशन पर बैठ गये कि मुझे अभी पाण्डुलिपि वापस कर दें। यह लहेरियासराय स्थित उनके आवास की घटना है। वह पाण्डुलिपि वस्तुतः राघोपुर में थी। तब डा. सुभद्र झा को लिखित आश्वासन दिया गया कि वे यथाशीघ्र इसे लौटा देंगे। नियत समय पर डा. झा को यह पाण्डुलिपि मिली। यह 1994-95ई. की घटना है। इसके बाद स्व. मोहन भारद्वाज के द्वारा प्रयास करने पर इसके प्रकाशन का भार तन्त्रवती गीता भवन, राँटी, मधुबनी में स्थापित संस्था ने लिया। वहाँ भी लगभग एक वर्ष तक रहने के बाद डा. सुभद्र झा ने अपने वकील विद्यानाथ झा सो सौंप दिया। 2000ई.में डा. झा की मृत्यु पर्यन्त यह प्रकाशित नहीं हुआ। उसके बाद यह जॉन साहेब वाली प्रति तथा डा. सुभद्र झा वाली प्रति का क्या हुआ यह शैक्षिक जगत् को पता नहीं है। डा. शंकरदेव झाजी ने इन पंक्तियों के लेखक को यह पूरी कहानी सुनायी है। इसमें लगभग 1500 गीत थे।

सन्त गोसाँईजी के गीतों का संकलन प. छेदी झा द्विजवर ने भी किया। बाद में भी अनेक प्रकाशन हुए हैं किन्तु अनेक गीत अभी भी अप्रकाशित हैं, जिन पर कार्य करने की आवश्यकता है।

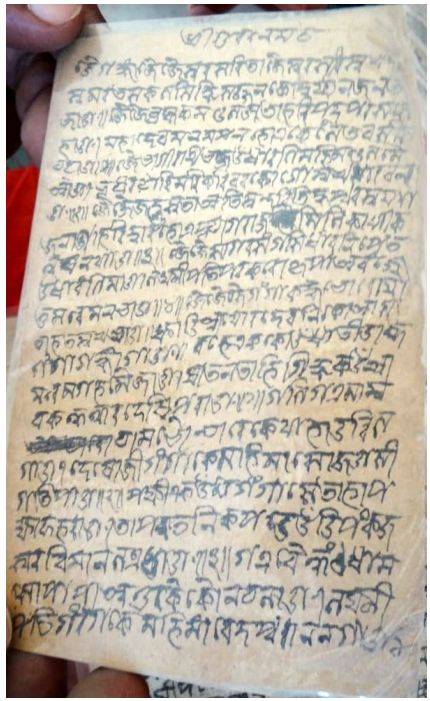

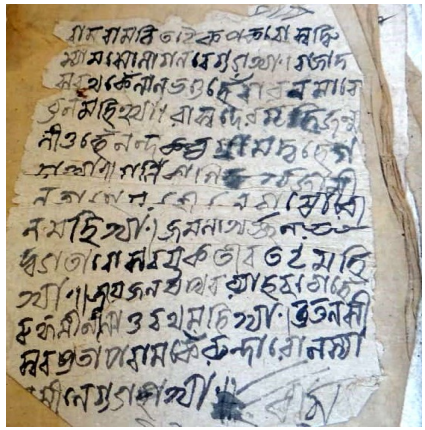

सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई का हस्तलेख

इसी अंक में एक सन्त भवानाथ झा प्रसिद्ध भोमर झा की भा रचना का दिग्दर्शन कराया गया है। ये भोमर झा सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई के समकालीन थे। साथ ही मिथिला के कबीरपन्थ सन्त घरभरन झा की पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में सूचना दी गयी है। इन दोनों सन्तों के साहित्य पर आज विशद रूप से विवेचन की आवश्यकता है, ताकि इन्हें भारतीय सन्त परम्परा में स्थापित किया जा सके।

***

सन्त साहित्य में सनातन धर्म

श्री राधा किशोर झा

विशेष सचिव, भारतीय प्रशासनिक सेवा, (अ.प्रा.) क्वांटम डीएनआर. एपार्टमेंट, फ्लैट सं. 305, 70 फीट बाइपास, विष्णुपुर, पकरी 35 फीट, बिहार डिजिटल वर्ल्ड के पास, द्वारकापुरी, पटना-800002

सनातन धर्म में हर काल में लोक-कल्याण की भावना से समता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है। काल के प्रवाह में जब कोई वस्तु अप्रासंगिक हो गयी है तो उसकी प्रासंगिकता का विरोध भी हुआ है। यही कारण है कि आगम ने वैदिक कर्मकाण्ड की ग्रन्थि का विरोध किया तो 8वीं शती के बाद प्रवाहित सन्त साहित्य ने पूर्ववर्ती व्यवहार पक्ष का भी विरोध किया, किन्तु सिद्धान्त पक्ष वे ही रहे जो वेद में कहे गये थे। इस प्रकार, सन्त साहित्य में भी सनातन का वही स्वरूप प्रवाहित है जो वैदिक साहित्य में है।

प्राचीन काल में सनातन धर्म के प्रचार-प्रसार में ऋषि-मुनियों का हाथ था। मध्यकाल में सन्तों ने सनातन धर्म को जन-जन तक फैलाया। मध्यकाल में समाज में व्याप्त पाखण्ड को सन्तों ने देखा और इसकी निन्दा की। इससे सतही तौर पर प्रतीत होता है कि वे सनातन धर्म के संरक्षक नहीं थे। परन्तु इस गहराई से अवलोकन करें, तो ज्ञात होता है सन्त-साहित्य में सनातन धर्म यथावत् रूप से मौजूद है। हम क्रमशः सन्तों के साहित्य में सनातन धर्म की ज्योति को देखेंगे।

कबीर

15वीं शती में रामानन्दाचार्य के 12 प्रधान शिष्यों में कबीरदास हुए। उन्होंने सनातन धर्म के बाह्य स्वरूपों पर काफी कटु शब्दों में प्रहार किया। लेकिन उनके साहित्य में धर्म के मूल स्वरूप पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि वे भी मूलतः सनातन के ही संरक्षक थे। उन्होंने मानवीय भावों की व्याख्या इस प्रकार की-

राम भजै सो जानिये, जाके आतुर नांहीं।
सत संतोष लीये रहै, धीरज मन मांही।
जन कौ काम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णा न जरावै।
प्रफुलित आनन्द में, गोविन्द गुण गावै।
जन कौ पर निंदा भावै नहीं, अरू असतिन भावै।
काल कलपना मेटि करि, चरनूं चित्त राखै।
जन समद्रिष्टी सीतल सदा, दुविधा नहीं आनै।
कहै कबीर ता दाससूँ मेरा मन माने।[1]

1. कबीर-ग्रन्थावली : भगवत्स्वरूप मिश्र (सम्पादक) : पदावली : पदसंख्या-362

इस विनय से स्पष्ट है कि कबीर, सत्य, संतोष, धैर्य, अकाम, अक्रोध, तृष्णाहीनता, असूया (परनिंदा का अभाव) ईश्वर के गुणगान, समदृष्टि, ईश्वर के चरण चिन्तन को भक्ति का आवश्यक अंग मानते थे।

कबीर ने गीता की तरह 'काम' को शत्रु माना है।

कहै कबीर सुनि यह काम रिपु है, मारै सबकूँ ढ़ाई।[2]

कबीर दया धरम, ज्ञान और गुरु सेवा को आवश्यक बताया है।

काम क्रोध माया मद मंछर ए सन्तति हम माहि।
दया धरम ज्ञान गुरु सेवा प्रभु सूपि नै नाही॥[3]

अहंकार का अभाव, अपमार्ग का परित्याग, सुख-दुःख में समानता, इन्द्रियों एवं मन की एकाग्रता आदि को आवश्यक माना है।

काम क्रोध मोह मदमत्सर, पर अपवाद न सुनियै।
कहै कबीर साध की संगति, राम नाम गुण भणिये॥[4]
ज्यूँ सुख त्यूँ दुख द्रिढ़ मन राखे एकादशी इकतार करै।
* * *
मैं तैं तजै तजै अपमारग, चारि वरन उपरांति चहै।[5]

हरिभक्त के लिए मान-अपमान, स्तुति-निंदा में समान, आशा का परित्याग, काम, क्रोध और लोभ का अभाव, लोहा-कंचन में समदृष्टि आवश्यक है।

तेरा जन एक आध है कोई
काम, क्रोध अरू लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है कोई।
* * *
अस्तुति निंदा आसा छाड़ै, तजै मान अभिमान।
लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवाना।
* * *
त्रिस्ना और अभिमान रहित है, कहै कबीर सो दासा॥[6]

गीता की तरह असंग भाव, अस्वाद, निर्लोभ और निष्काम को श्रेयस्कर माना है

जग सूँ प्रीति न कीजिए, संमझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसे सूरा।
एक कनक अरू कामिनीं, जग में दोई फंदा।
इन पै जौ न बँधावई, ताका मैं बंदा॥[7]

कबीर का मानना है कि जो निर्वैर है, निष्काम है, ईश्वर प्रेमी है तथा विषयों के प्रति वैरागी है वही सन्त है—

2. उपरिवत् : पदावली : पदसंख्या-308.
3. उपरिवत् : पदावली : पदसंख्या- 191.
4. उपरिवत् : पदावली : 253.
5. उपरिवत् : पदावली : 183.
6. उपरिवत् : पदावली : 184
7. उपरिवत् : पदावली : 188.

निरबैरी निष्कामता, साई सेती नेह।
विषिया सूँ न्यारा रहै, सन्तनि का अंग एह ॥[8]

कबीर ने हृदय शुद्धि को भगवद्भक्ति के लिए आवश्यक बताया -

हरि न मिलै बिन हिरदै सूध।[9]

कबीर वेद के अध्ययन का फल का निरूपण किया है। वेदाध्ययन का फल घट-घट में राम का दर्शन है। इस प्रकार अध्ययन को उन्होंने स्वीकार किया परंतु पाखंड का खंडन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर साहित्य में सामान्य धर्म और परम धर्म का पर्याप्त वर्णन है। परम धर्म के रूप में कबीर साहित्य में भक्ति योग का पूर्ण वर्णन है। कबीर ने भक्ति के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक 'काम' को माना है। वे कहते हैं कि काम को छोड़कर राम के नाम उच्चारण करो। हरि का नाम अभय पद प्रदान करता है—

परिहरि काम राम कहि बौरे सुनि सिख बंधू मोरी।
हरि कौ नांव अभै पद दाता कहै कबीर कोरी ॥345 ॥[10]

आगे वे कहते हैं कि हमारे शरीर के भीतर मदन यानी काम चोर की तरह बैठा हुआ है—

तन भींतरि बसै मदन चोर तिनि सर बस लीनौ छोरि मोरि।
मांगै देइ न बिनै मांग ताकि मारै रिदा में काम बान।
जप, तप, संजम सुंचि ध्यान, बंदि परे सब सहित ग्यानि।
कहै कबीर द्वे तीनि, जा परि गोविंद कृपा कीन्ह ॥ 384 ॥

कबीर में इसी काम को शत्रु कहा है—

कहै कबीर सुनि यह काम रिपु है, मारे सबकूँ ढ़ाई ॥308 ॥

आगे पुनः वे मदन यानी काम को चोर के रूप में लिखते हैं-

माधौ दारून दुख सह्यो न जाई। मेरो चपल बुधि तातैं कहा बसाई।
तन मन भीतरि बसै मदन चोर, जिनि ग्यान रतन हरि लीन्ह मोर।
कहै कबीर बहु संग साथ, अभि अंतरि हरि सू कहौ बात।
मन ग्यान जानि कै करि विचार, राम रमत भौ तिरियौ पार ॥383 ॥

कबीर भी योग और ध्यान को विकार माना है। कबीर की इस उक्ति की तुलना आचार्य शंकर के गीता-भाष्य[11] से की जा सकती है।

जोग ध्यान तप सबै विकार, कहै कबीर मेरे राम अधार ॥ 336 ॥

इसलिए कबीर हरि के नाम को ही अपना धन मानते हैं। भगवान का नाम ही कबीर का आधार है—

सो धन मेरे हरि का नाउ ॥332 ॥

8. उपरिवत् : साखी : 27.1 9. उपरिवत् : पदावली : 379.

10 कबीर-ग्रन्थावली : भगवत्स्वरूप मिश्र (सम्पादक) : पदावली से सभी संगत पदसंख्या ऊपर दी गई है।

11. तुलनीय- आचार्य शंकर : गीताभाष्य : 7.1- अयं तु योगी मामेवाश्रयं प्रतिपाद्यते। हित्वान्यत् साधनानन्तरं मयि एव आसक्तमना भवति।

कबीर के पदों में भी नवधा भक्ति के साथ-साथ भक्तिकाल के अन्य तत्त्वों का समावेश है।

भगति का दुख राम जानै, कहै दास कबीर। 285

इस प्रकार, हम कबीर के पदों एवं विनयों में सामान्य धर्म के विपुल लक्षण यत्र-तत्र-सर्वत्र देखते हैं। कबीर ने इसे भगवद् भक्ति के लिए आवश्यक माना है। भागवत में भक्ति को परम धर्म माना गया है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽत्मा सम्प्रसीदति॥[12]

मनुष्य के लिए परम धर्म यही है, जिससे भगवान अधोक्षज में भक्ति हो। भक्ति भी ऐसी, जिसमें कामना नहीं हो और अप्रतिहत हो तथा जिससे आत्मा प्रसाद अवस्था में रहे[13]— धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तः॥[14] भगवद्भक्ति ही धर्म कही गई है।

कबीर निसंदेह एक भक्ति योगी थे। उनमें भक्त के सभी लक्षण मौजूद थे। कबीर के विनय में शरणागति, स्मरण, हरि का गुणगान, प्रेम, हरि कथा में प्रेम, राम नाम का जप, भगवद् प्रार्थना, विरह आदि के भाव पर्याप्त रूप में मौजूद है। उसका एक-आध उदाहरण[15] ही यहाँ देना पर्याप्त होगा —

(क) हरि का गुणगान

कहै कबीर मैं हरि गुन गाऊँ, हिंदू तुरक दोई समझाऊँ॥256॥

(ख) हरि स्मरण

संसार सागर विषम तिरणां, सुमरि लै हरि नाम।
कहै कबीर तहाँ जाई रहणा नगर बसत निधान॥237॥

(ग) लीला जस गान

सोच विचारि सबै जग देख्या, निरगुण कोई न बतानै।
कहै कबीर गुणी अरू पंडित, मिलि लीला जस गावै॥186॥

(घ) शरणागति

कबीर ने शरणागति को प्रमुखता से स्वीकार करते हुए कहा है—

निगम जाकी साखि बोलै, कहै सन्त सुजान।
जन कबीर तेरी शरनि आयौ, राखि लेहु भगवान॥300॥

(ङ) हरिनाम

सो धन मेरे हरि का नाउ गाठि न बांधयौ बेचि न खाउँ।
नाउ मेरी खेती नाउ मेरी बारी, भगति करौ मै सरन तुम्हारी।
नाउ मेरे सेवा नाउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जानौ दूजा॥332॥
हरि में तन है तन में हरि है, है पुन नाहिं सोई

12 भागवत : 1.2.6. 13 भागवत : 3.29.12.
14 भागवत : 11.19.37
15 उपर्युक्त कबीर-ग्रन्थावली की पदावली से संगत पद संख्या दी गई है।

कहे कबीर हरि नाम न छांडू सहजै होई सो होई ॥292 ॥

(च) हरिरस

इहि चिति चाखि सबै रस दीठा, राम नाम सा और न मीठा।
और रसि ह्वै है कफ गाता, हरि रस अधिक अधिक सुखदाता ॥148 ॥

(छ) हरिभगति —

माधौ मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति होत नहीं साधी।
तुम्ह कृपा दयाल दमोदर, भगत बछल भौं-हारि।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति हरो हमारी ॥191 ॥

(ज) कबीर की व्याकुलता-

तुम्ह से वैद न हमसे रोगी, उपजी विथा कैसे जीवें वियोगी।
निसि वासुर मोहि चितवत जाई, अजहूँ न आई मिले राम राई।
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, दिन दरसन क्यूं जीवहि मुरारि ॥286 ॥

(झ) कर्मफल पर विश्वास

सनातन धर्म में प्रबल विश्वास है कि कर्मफल अवश्य भोगना पड़ता है। इस सम्बन्ध में कबीर का कहना है-

राम राइ तेरी गति जांणी न जाई।
जो जस करिहै सो तस परहै राजा राम नियाई ॥200 ॥

(ञ) कबीर का पाखण्ड विरोध

सनातन धर्म में प्रचलित पाखण्ड का घोर विरोध कबीर ने अपनी पदावली में किया है-

हरि बिन झूठे सब व्यौहार केते कोऊ करौ गँवार।
झूठा जप तप झूठा ग्यान राम राम राम बिन झूठा ध्यान।
विधि नखेद (निषेध) पूजा आचारसब दरिया मैं बार न पार।
इंद्री स्वारथ मन के स्वाद जाँच साच तहाँ मांडै बाद।
दास कबीर रह्या ल्यौ लाई मर्म कर्म सब दिये बहाई॥ 152 ॥

(ट) कबीर की नारदीय भक्ति-

सन्त कबीर पर नारदभक्तिसूत्र का प्रभाव था-

भगति नारदी मगन सरीरा, इह विधि भव तिरि कहै कबीरा॥ 277 ॥

(ठ) कबीर का अद्वैतबोध-

वे कहते हैं कि मैं सबमें व्याप्त हूँ और मुझमें सबकुछ व्याप्त है—

हम सब माहि सकल हम मांहि हम थै और दूसरा नाहीं ॥331 ॥
सति असति कछू नहीं जानूं जैसे बजावा तैसे बरना।
चोर तुम्हार तुम्हारी आग्या मुसियत नगर तुम्हारा॥
इनके गुनह हमहि काहि पकरौका अपराधा हमारा ॥291 ॥

(ङ) कबीर पर उपनिषत् का प्रभाव-

श्वेताश्वतरोपनिषत् में एक प्रसिद्ध मन्त्र है- **अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्ण**ः अर्थात् वह परम पुरुष हाथ-पैरों से रहित होने के बावजूद गमनशील है एवं ग्रहण करता है, वह आँखों से रहित होकर भी देखता है और विना कान का सुनता है। कबीर नें इसी बात को अपनी पदावली में इस प्रकार कहा है-

बिन हाथनि पाइन बिन काननि बिन लोचन जग खूलै।
बिन मुख खाइ चरन बिन चालै बिन जिभ्या गुण गावै॥159॥

रैदास

रैदास उत्तर भारत के प्रसिद्ध सन्त हुए हैं। इनका प्रभाव उत्तर प्रदेश, राजस्थान और गुजरात में अधिक है। कबीर के बाद इनका नाम सर्वप्रमुख रहा है। रैदास ने अपने पदावलियों में पाखण्ड की निंदा की है और अनपायनी भक्ति की प्रशंसा की है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि धर्म का निरूपन तो विविध प्रकार से लोगों द्वारा किया जाता है परन्तु वह धर्म जिससे मुक्ति मिलती है उस धर्म का पहचान किसी को नहीं है—

बहुविधि धरम निरूपिये, करता देखै सब कोई।
जेहि धरमें भ्रम छुटिहै, सो धरम न चीन्हें कोई॥
करम अकरम विचारिये, सुनि सुनि वेद पुराण।
हंसा सदा हिरदै बसै, हरि बिन कौन हरै अभिमान॥
अनेक जतन करि टारियै, टारे न टरे भ्रम फांस।
प्रेम भगति नहिं उपजैं तातें जन रैदास उदास॥[16]

रैदास की दृष्टि में धर्म वही है, जिसमें भ्रम से मुक्ति मिले। संसार एक भ्रम है। इससे मुक्ति का रास्ता ही धर्म का मार्ग है। मनु ने भी आचार को परम धर्म माना है—

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥[17]

आचार ही परम धर्म है। यह आचार श्रुति एवं स्मृति के अनुकूल होना चाहिए। जिस आचार के अनुपालन से सभी फलों (अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष) की प्राप्ति होती है। रैदास ने भगवान् से प्रार्थना की है कि सन्त-आचरण एवं सन्त-मार्ग में उनका मन लगे।

सन्त आचरण सन्त सो मारग। सन्त ही सो लागै लगनि॥
× × ×
सन्त ही संगति सन्त कथा रसु सन्त प्रेम मोहि छीजै देवादन।
× × ×
अउर इक मांगउ भगति चिंता मनि जनि लखावहु असत पापी जनि।[18]

16. रैदास बानी : शुकदेव सिंह (सम्पादक) : पदावली- 154 : 175.
17. मनुस्मृति 1.108.
18. रैदास-बानी : उपर्युक्त : पदावली : 170

सनातन धर्म में सदाचरण की ही प्रमुखता है। प्रश्नोपनिषत् में लिखा है कि ऋषीणाम् चरितं सत्यं। ऋषियों का चरित ही सत्य है। मुण्डकोपनिषत् कहती है— सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः येनाक्रमन्ति हि ऋषयो आप्रकामाः यत्र सत्यस्य परमं निधानम्। सत्य की विजय होती है। सत्य का पथ ही देवयान पथ है। जिस पर ऋषिगण चलकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। यही सन्त पथ है; सन्त मार्ग है।

रैदास ने भी करम अर्थात् धर्म का लक्ष्य ज्ञान माना है—

फल कारन फूलै बनराई, फूल लागा तब पुहुप बिलाई।
ग्यानहि कारण करम कराई उपजै ज्ञान तो करम नसाई॥[19]

रैदास के इस भाव की तुलना गीता की निम्नलिखित पंक्ति से की जा सकती है— सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।[20] अर्थात् सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में विलीन हो जाता है। गीता में भी कर्मयोग की सिद्धि ज्ञान से उद्भूत होनी की बात कही गई है—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥[21]

रैदास ने शास्त्र श्रवण का फल बहुत सुन्दर ढंग से एक पदावली में गया है—

साधौ का सासन सुनि कीनौ।
अनपायनी भगति नहीं साधी, भुखै अंन न दीनौ।
काम न विस्रयौ डंभ न त्यागी, लोभ न विसरयौ देवा।
पर निंदा मुख तै नहि छाड़ी, निफल भई सब सेवा।
बाट पाड़ि घर मूसि परायौ, उदरि भरयौ अपराधी।
ह्वै अपराधी केसो न सिमरियौ, इहु अविद्या साधो।
हरि अरपन करि भोजन नहि कीनौ, कथा कीरति नहि जानी।
राम भगति बिन मुक्ति न पावै, अमर जीव गरावै प्रानी।
चरन कंबल अनराग न उपज्यौ, भूत दया नहीं पाली।
रैदास प्रभु साध संगति मिलि, पूरन ब्रह्म सदा प्रतिपाली।[22]

शास्त्र श्रवण किया, परन्तु हरि की अनपायनी भक्ति नहीं साधी, काम एवं लोभ का विस्मरण नहीं किया, दंभ का त्याग नहीं किया, पर निंदा नहीं छोड़ा तो शास्त्र श्रवण व्यर्थ है। सभी सेवा निष्फल है। हरि को अर्पण कर भोजन नहीं करता है, और हरि कथा एवं कीर्ति का ज्ञान नहीं है, उदर-पूरण करने हेतु बटमारी करता है और केशव का सुमिरन नहीं करता है। प्राणियों के प्रति दया नहीं है। ऐसे व्यक्ति के हृदय में प्रभु चरण कमल के प्रति अनुराग नहीं उपजता है। रैदास ने भक्ति की और साधु आचरण की रूपरेखा प्रस्तुत की है। इसमेंसामान्य धर्म और परम धर्म दोनों की अभिव्यक्ति है।

19. उपरिवत् : 113.
20. गीता : 4.33.
21. गीता : 4.38.
22. रैदास-बानी : उपर्युक्त : पदावली : 179

गुरु नानक

सिख पन्थ में भी सामान्य धर्म एवं परम धर्म की अभिव्यक्ति सर्वत्र हुई है उसका एक उदाहरण गुरु ग्रन्थ साहिब से उद्धृत किया जाता है—

उरि धारै जो अंतरि नामु सरब मैं पेखै भगवानु।
निमिख निमिख ठाकुर नमस्कारै।
नानक ओहु अपरसु सगल निस्तारै,
मिथिआ नहि रसना परसमन महि प्रीति निरंजन दास।
पर त्रिय रूप न पेखै नेत्रसाध की टहल सन्त संगि हेत।
करन न सुनै काहू की निंदा। सभ ते जाने आपस कउ मंदा।
गुरु प्रसादि विखिया पर हरै। मन की वासना मन ते टरे।
इंद्री जित पंच दोख ते रहत। नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस॥[23]

जो मनुष्य सदा अपने हृदय में अकाल पुरुष का नाम टिकाए रखता है और भगवान को सर्व व्यापक देखता है, जो पल-पल अपने प्रभु को पुकारता है। वह (सच्चा) अस्पर्श (निर्लिप्त) है और वह सब जीवों को तार देता है। जो मनुष्य जीभ से मिथ्या नहीं बोलता, मन में परम पुरुष (निरंजन) को दर्शन की इच्छा रखता है, जो पराई स्त्री के सौंदर्य को अपनी आँखों से नहीं देखता, भले मनुष्य की सेवा करता और सत्संगति में प्रीति रखता है। जो कानों से दूसरों की निंदा नहीं सुनता, अपने को सबसे छोटा समझता है, जो गुरु की कृपा से विषय विष दूर कर मन की वासना को मन से दूर कर देता है। जिसने अपने इन्द्रियों को जीत लिया है और कामादिक पाँचों दोष के रहित है, हे नानक करोड़ में कोई ऐसा विरला व्यक्ति अस्पर्श (निर्लिप्त) होता है।

दादू

दादू-साहित्य में भी सामान्य धर्म एवं परम धर्म का चित्रण सर्वत्र मिलता है—

नारी नेह न कीजिए, जे तुझ राम पिराया।
माया मोह न बाँधिए, तजिए संसारा॥
विषया रंग राचे नहीं, नहि करे पसारा।
देह गेह परिवार में, सब तै रहै निराया॥
आपा पर उरझे नहीं, नाही मैं मेरा।
मनसा वाचा कर्मणा, सांई सब तेरा॥
मन इन्द्रिय सुस्थिर करे, कतहुँ नहि डोले।
जग विकार सब परिहरै, मिथ्या नहिं बोले॥
रहे निरंतर राम सौं, अंतर गति राता।
गावे गुण गोविन्द का दादू रस माता॥[24]

23. श्रीगुरुग्रन्थ साहिब : भुवन वाणी ट्रस्ट : लखनउ : भाग 1 : पृ. 66.
24. दादू ग्रंथावली : डा. बलदेव बंशी (सम्पादक) : 324.

नारी प्रेम से दूर, राम प्रिय, माया-मोह से मुक्त, संसार त्यागी, विषयासक्त नहीं, शरीर, घर, परिवार से अनासक्त, मैं मेरा से मुक्त, मन-वचन और कर्म से कर्मों का भगवान् में अर्पण, मन एवं इन्द्रिय स्थिर, अविकारी, सत्यवादी, निरन्तर राम भगति में तल्लीन और गोविन्द में गुण का गान रस में मत्त होना चाहिए। ये सभी गुण सामान्य और परम धर्म के अन्तर्गत आते हैं।

तुलसीदास

सन्त साहित्य में महान् कवि तुलसी कृत रामचरितमानस शीर्ष स्थान पर है। इसके लंकाकाण्ड में विभीषण और राम संवाद में वर्णित धर्ममय रथ का वर्णन सुस्पष्ट है। यह रथ का कमोवेश वर्णन भगवान् बुद्ध ने भी अपने त्रिपटक में किया है।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्यशील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुद्धि शक्ति प्रचंडा। वर विग्यान कठिन कोदण्डा॥
अमल अचल मन त्रोण समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा॥
सखा धरममय अस रथ जाकें। जीत न कहुँ न कतहुँ रिपु ताके॥[25]

शौर्य और धैर्य उस धर्म रथ के पहिए हैं, सत्य और शील उसकी मजबूत ध्वजा और पताका है। बल, विवेक, दया और परोपकार ये चार उसके घोड़े हैं जो क्षमा दया और समता रूपी डोरी से रथ में जोड़े हुए हैं। ईश्वर भजन ही चतुर सारथी है। वैराग्य ढ़ाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल और अचल मन तरकस के समान है। शम, यम और नियम— ये बहुत से वाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवचहै। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके लिए जीतने को कहीं शत्रु ही नहीं है।

महात्मा गाँधी ने इस धर्ममय रथ का उपयोग कर भारत को स्वतन्त्रता दिलायी तथा यह सिद्ध कर दिया कि ऋषि मुनि की वाणी सर्वथा आज भी सत्य है— 'वृथा न होइहिं देव रिषि वाणी।' तुलसी साहित्य में अन्यत्र भी सामान्य धर्म का वर्णन है—

(क) सत्य

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥[26]

(ख) अहिंसा

परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गिरीसा॥[27]

(ग) दया

धर्म की दया सरिस हरिजाना।[28]

25. रामचरितमानस : 6.79.5-11.
26. रामचरितमानस : 2.94.5
27. रामचरितमानस : 7.120 (ख)- 22.
28. रामचरितमानस : 7.111 (ख) -10.

(घ) परहित

परहित सरिस धर्म नहि भाई। पर पीड़ा सम नहि अधमाई॥[29]
जप तप नियम योग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना शुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जँह लगि धर्म कहति श्रुति सज्जन॥[30]
जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह शुभ धर्म आचारा॥[31]

रामचरितमानस में विशेष धर्म वर्णाश्रम धर्म

सोचिअ विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धरमु विषय लय लीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जाहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना॥
सोचिअ बयसु कृपन धनबानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानु॥
सोचिअ सूद्र विप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यान गुयानी॥
सोचिअ पुनि पति वंचक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छा चारी॥
सोचिअ बटु निज व्रत परिहरई। जो नहि गुरु आयसु अनुसरई॥
सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत विगत विवेक विराग॥
वैरवान से सोई सोचै जोगू। तपु विदाई जेहि भावइ भोगू॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जनिन जनक गुरुबंधु विरोधी॥
सब विधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबहीं विधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरिजन होई॥[32]

सोच उस ब्राह्मण का करना चाहिए, जो वेद नहीं जानता और जो अपना धर्म छोड़कर विषय भोग में लीन रहता है। उस राजा का सोच करना चाहिए जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्यारी नहीं है। उस वैश्य का सोच करना चाहिए, जो धनवान होकर भी कंजूस है और जो अतिथि सत्कार तथा शिवजी की भक्ति करने में कुशल नहीं है। उस शूद्र का सोच करना चाहिए जो ब्राह्मणों का अपमान करनेवाला, बहुत बोलने वाला, मान-बड़ाई चाहनेवाला और ज्ञान का घमंड रखनेवाला है। पुनः स्त्री का सोच करना चाहिए जो मोहवश कर्म मार्ग का त्याग कर देता है, उस संन्यासी का सोच करना चाहिए जो दुनिया के प्रपंच में फँसा हुआ है और ज्ञान वैराग्य से हीन है। वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है जिसकी तपस्या छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं। सोच उसका करना चाहिए जो चुगलखोर है, बिना कारण ही क्रोध करनेवाला है तथा माता, पिता, गुरु एवं भाई-बंधुओं के साथ विरोध रखनेवाला है। सब प्रकार से उसका सोच करना चाहिए जो दूसरों का अनिष्ट करता है, अपने शरीर का पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है। वह तो सभी प्रकार से सोच करने योग्य है जो छल छोड़कर हरि का भक्त नहीं होता।

इस प्रकार, सन्त तुलसी ने चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों के धर्म का वर्णन किया है। उनका विश्वास है कि जो वेद पथ पर चलते हैं तथा वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं उन्हें शोक और रोग नहीं होता है।

29. रामचरितमानस : 7.40.1.
30. रामचरितमानस : 7.48.(1-2).
31. रामचरितमानस : 7.116.(ख)-5.
32. रामचरितमानस : 2.172.

बरनाश्रम निज-निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहि भय शोक न रोग॥[33]

धर्म सरोवर में ज्ञान और विज्ञान के कमल खिलते हैं।

तुलसी साहित्य में वर्णित राजधर्म

मुखिया मुख सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पौषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक॥[34]
राजधरम सरबसु एतनहि। जिमि मन मोह मनोरथ गोई॥

श्री रामजी ने कहा— मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक है परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन पोषण करता है। राजधर्म का सर्वस्व भी इतना ही है। जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है।

सन्त तुलसी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरितमानस में विशेष धर्म के अन्तर्गत स्त्री धर्म का भी वर्णन अरण्यकाण्ड में अहल्या-सीता संवाद में दिया है। उनके द्वारा परम धर्म के रूप में ज्ञान एवं भक्ति का भी वर्णन उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डी एवं गरुड़ संवाद के अन्तर्गत किया गया है।

सन्त तुकाराम

सन्त तुकाराम के काव्यों में भी सामान्य धर्म एवं परम धर्म का प्रभूत वर्णन है। उनके मतानुसार सन्त प्रणीत आचार का मार्ग ही धर्म का मार्ग है, अनुकरणीय मार्ग है। सन्त तुकाराम की दृष्टि में सत्यपालन करने वाल, प्राणि मात्र को ईश का अंश मानकर उन पर अनुग्रह करनेवाला परदु:ख को अपन दु:ख समझनेवाला सन्त है।

भूती भगवद्भाव। मात्रासहित जीव, अद्वैत तो ठाव। निरंजन एकला। एसी गर्जती पुराणे। वेद वाणी सकल जन। सन्त गर्जतील तेणे। अनुभवें निर्भर।[35]

गृहस्थ के लिए कल्याणकारी मार्ग यह है कि वह इमानदारी से धन कमाकर उदासीन वृति से उसे व्यय करे। परोपकार करना, परनिंदा न करना, परस्त्री को माता और बहन समझना, समस्त प्राणियों के प्रति सद्भाव रखते हुए गाय आदि पशुओं का पालन करना, तृषितों के लिए वनादि में जल की व्यवस्था करना, शान्त भाव धारण करना, किसी के अहित की कामना न करना, अपने से बड़ो को मान-सम्मान करना गृहस्थाश्रम के यही मुख्य फल है। और परमपद प्राप्ति के लिए आवश्यक वैराग्य बल यही है।

जोडोनिया धन उत्तम बेव्हारे। उदास विचारें वेच करी।
उतम चि गती तो एक पावेल उतम भोगील जीव रवाणी।
पर उपकारी नेणें परनिंदा। परस्त्रिया सदा बहिणी माया।
भूतदया गाई पशूचें पालन। तान्हेल्या जीवन बनमाजी।
शान्तिरूपे नन्हें कोणाचा वाईट वादवी महत्व वडिलांचे।
तुका म्हणे हें चि आश्रमाचे फल। परमपद वल वैराग्या चैं।[36]

**

33. रामचरितमानस : 7.20. 34. रामचरितमानस : 2.315. 35 तुकाराम गाथा-2773
36 तुकाराम गाथा -2864

सौराष्ट्र के सन्तों द्वारा सामाजिक-सद्भावना का सन्देश

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'
एसोसिएट प्रोफेसर-हिंदी विभाग
पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा
मूलतः बस्ती, उत्तर प्रदेश के डा. मणि की अभीतक 55 पुस्तकें प्रकाशित हैं। समकालीन परिप्रेक्ष्य में भारतीय सन्तों के योगदान पर डी.लिट् हेतु शोधकार्य कर रहे हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से गुजरात प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। इसका प्राचीन नाम गुर्जर प्रदेश है। संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने गुर्जरी नारियों की वर्णन रीति के सन्दर्भ में किया है। इसकी प्रदेश के दक्षिणी भाग को लाट देश के नाम से भी ख्याति मिली है। अनुप्रास अलंकार के सन्दर्भ में इस प्रदेश की अपनी विशेषता रही है, अतः लाटानुप्रास एक भेद के रूप में स्थापित है। इसी सम्पूर्ण प्रदेश का एक नाम सौराष्ट्र भी है। यहाँ लोकभाषा में रचना करने वाले सन्तों की एक विशेष परम्परा रही है, जिन्होंने सामाजिक भेज-भाव को दूर कर एकता, सामाजिक समरसता तथा लोककल्याण के लिए काम किया है। ईसा की 14वीं शती से नरसी मेहता, मूलदास, अखा, मेकण, गिरिधर आदि सन्तों की वाणियाँ आज भी प्रासंगिक हैं। एक क्षेत्रविशेष पर आधारित यह सर्वेक्षण अग्रतर शोधकार्य हेतु महत्त्वपूर्ण है।

गुजरात सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रदेश है, जहाँ से राष्ट्रीय स्तर के विश्वविख्यात सन्त, महात्मा, कवि और महापुरुष उत्पन्न हुए। यद्यपि काव्यशास्त्रों में लाटीया रीति प्रचलित है। इससे पता चलता है कि गुजरात का प्राचीन नाम लाट भी है। परन्तु गुजरात का प्राचीन नाम सौराष्ट्र भी मिलता है। यहाँ की भावभूमि बहुत ऊर्जस्वित है, जहाँ नरसी मेहता सन्त और महात्मा गाँधी जैसे महापुरुष का अवतरण हुआ है।

प्राचीन समय से सौराष्ट्र (गुजरात) से भारत को ज्ञान का प्रकाश मिलता रहा है। यहाँ सिद्ध, नाथ, सन्त और भक्त द्वारा अपने ज्ञान, प्रेम, समता, एकता से समाज और राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधकर समरसता की सलिला प्रवाहित की गई है। इसमें प्रमुख रूप से उत्तर भारत के सन्त-महानायक स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा बहुत पुष्पित-पल्लवित हुई है। जातीय भेदभाव को दूर करते हुए सामाजिक समरसता एवं एकता को स्थापित करने के लिए स्वामी रामानन्द के शिष्यों- कबीर, अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, योगानन्द, सन्त पीपा आदि ने अप्रतिम योगदान दिया। इन सन्तों की अमरवाणी से गुजरात की धरती सस्य-श्यामला हो गई। तत्कालीन सामाजिक विषमताओं, शासकीय यातनाओं से छुटकारा पाने के लिए निर्धन-निर्बल जनों ने प्रभु-संकीर्तन का अवलम्बन किया। चौदहवीं शती से ही नरसी मेहता, मूलदास, अखा, मेकण, गिरधर, सहजानन्द, मुक्तानन्द, दयानन्द जैसे महान सन्तों ने

भक्ति की गंगा प्रवाहित की तो गंगाबाई और पानबाई ने अपनी भक्ति-साधना से सौराष्ट्र में महिला सन्त की भूमिका निभायी।

सन्त मत को गुजरात में विस्तार प्रदान करने वालों में टीलाचार्य, मंगलाचार्य, वैष्णवाचार्य, पीपा जी महाराज, बस्तों, विश्वम्भर, प्रीतम, द्वारकादास, बलरामदास, रामकुमार खाकी प्रभृति भक्तों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। रामानन्दी सम्प्रदाय के अनेक आश्रमों एवं अखाड़ों का बाहुल्य गुजरात में प्राप्त होता है, किन्तु स्वामी रामानन्द के शिष्य सन्त कबीरदास की भी शिष्य परम्परा प्राप्त होती है। सन्त साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है- (कबीर) 'उनके शिष्य नीलकण्ठ ने गुजरात काठियावाड़ की यात्रा की थी और उन्होंने कुछ ऐसे शिष्यों को दीक्षित किया था, जिनके द्वारा इस पन्थ की स्थापना हुई।'[1]

इस प्रकार गुजरात में राम कबीरिया तथा सन्त कबीरिया दो सम्प्रदाय विकसित हुए, जिनकी अनेक शाखाएँ और उनके सन्त आज भी मिलते हैं। 'राम कबीरिया' स्वामी रामानन्द के अनुयायी हैं, जो राम को मानते हैं और रामानन्दीय वैष्णव कहलाते हैं, किन्तु सन्त कबीरिया निर्गुण सन्त की परम्परा के अनुयायी हैं। राम कबीरिया की परम्परा में ज्ञानी जी के शिष्य गोपालदास हुए और उनके शिष्य जीवन जी महाराज हुए। जीवन सन्त 'ऊदा पन्थ' के प्रवर्तक माने जाते हैं।[2] गुजरात में स्वामी नारायण जी का समृद्ध सम्प्रदाय अट्ठारहवीं शताब्दी से पल्लवित-पुष्पित हो रहा है। यह गुजरात और भारत के बाहर भी बहुत विस्तार ले चुका है। वर्तमान में इसकी कई शाखाएँ देश-देशान्तर में स्थापित है। वर्तमान समय में यह बहुत आर्थिक सम्पन्न धार्मिक सम्प्रदाय माना जाता है।

भारत के पश्चिम दिशा गुजरात में हिन्दू-मुस्लिम सन्त, भक्त, पीर और फकीरों का अखण्ड प्रवाह दिखाई देता है, जिनमें मीर मुराद (1823-1905), बाबा दीन-दरवेश (1711-1832), बाबा नुरुद्दीन, बाबा मलेक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गुजरात के बाबा नुरुद्दीन पालनपुर के निवासी थे जो बाबा दीन के आश्रम में रहते थे। वे भगवान राम के परम भक्त थे, जिन्होंने कई कुण्डलियाँ लिखी हैं-

नूर फकीर जाने नहीं, जात वरण एक राम।
तुम चरणन में आय के अब तो किया विश्राम॥[3]

सोलहवीं शती के बाबा मलेक नर्मदा नदी के किनारे रहते थे। इनके गुरु हरिदास थे। इन्होंने रहीम और रसखान की भाँति भारत के प्राणाधार भगवान राम का सदैव बखान किया है-

महापतित को पावन कीन्हों राम रंग में राचा।
'दास मलेक' निर्भय हुई सोया काल न भागो डाचा॥[4]

बाबा नुरुद्दीन और मलेक की भाँति मीर मुराद भी भगवान राम के भक्त थे, जिन्होंने सम्पूर्ण जीवन राम और उनके जगत के जीव की सेवा में बिता दिया। बाबा मीर मुराद राम को सर्वत्र देखते थे। उन्होंने बोधबहत्तरी, बन्दगी-बन्ध, गुणवाणी विलास, सम-दातार-संवाद, गरुड़-हनुमान संवाद जैसी रचनाएँ की हैं। उन्होंने लिखा है-

कहत 'मोराद' जहाँ राम जी से काम नहीं।
राम बिना गाम वाकू, लपट कर लेखिए॥[5]

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी- उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ.292
2. डॉ. वासुदेव सिंह- हिन्दी सन्त काव्य: समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ.56
3. डॉ. आर एस. प्रजापति- रामानंद संप्रदाय और साहित्य, पृ.301
4. वही, पृ.298
5. वही, पृ.297

सौराष्ट्र के सन्त भक्तों की परम्परा में बाबा दीनदरवेश महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इन्हें पालनपुर-गुजरात का माना जाता है। इनका विचार अत्यन्त उच्चकोटि का था। इस्लाम परम्परा के संवाहक होते हुए भी बाबा दीन दरवेश ने अपने विचारों, सिद्धान्तों एवं रचनाओं को नई दिशा दी है। 'राजस्थान का सन्त साहित्य' में लिखे गये, एक छन्द से ज्ञात होता है कि उनकी स्त्री-पुरुष के प्रति समदृष्टि थी।

नारी जननी जगत री पाल पोस दे पोष।
मूरख राम बिसार कर ताहि लगावै दोष॥[6]

बाबा दीन दरवेश ने सामाजिक जातियों की एकता के लिए भी बहुत प्रयास किया। भारतीय संस्कृति के विकास में हिन्दू-मुसलमानों की एकता को आवश्यक बताते हुए दोनों को एक दाल का दो कण बताया है-

हिन्दू कहै सो हम बड़े मुसलमान कहें हम्म।
एक मूँग दो फार हैं, कुण ज्यादा कुण कम्म॥[7]

निःसन्देह, सौराष्ट्र के भक्तों एवं सन्तों के संदेश से सामाजिक-समरसता एवं राष्ट्रीय-एकता में बल मिला है। इसके विभिन्न प्रमुख संतों, भक्तों के अवदान को रेखांकित किया गया है।

गुजरात के सन्त स्वामी मूलदास भजनानन्दी भक्त थे। इनका जीवन वृत्तान्त विशेष नहीं मिलता है। इन्हें गुजरात का समर्थ सन्त महात्मा मूलदास के नाम से भी जाना जाता है। इनके जीवन और मृत्यु का कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है। जनश्रुतियों में इनके विचार एवं भजन प्राप्त होते हैं। इनके अनुसार दया और सत्यता के सम्मिलन से ही धर्म एवं शान्ति एक-दूसरे का साथ देते हैं। 'प्रीतम बरनी चुन्दादी' इनका प्रसिद्ध भजन है। अपने भजनों के माध्यम से इन्होंने सभी जीवों में परमात्मा का वास बताया है-

बूंद पड़े बहु भाँत न कोई जाडा कोई झीणा।
घन गगन माँ एक छे नाहिं कोई मोटा न हीणा॥[8]

इन्होंने जीवन-पर्यन्त परमात्मा का अंश मानकर दीन-हीन जनों की सेवा की है।

चौदहवीं शताब्दी की ऐसी परिस्थिति थी कि महिलाएँ सन्त-भक्त नहीं बन पाती थीं। सन्त महिलाओं के कम नाम मिलते हैं। गुजरात की लीरलबाई, दक्षिण की अण्डाल, आन्ध्र की अक्क महादेवी, राजस्थान की मीरा और कश्मीर की लल्लेश्वरी की भाँति एक भक्त महिला थीं। जिनका जीवन लुहार परिवार के मजेवाड़ी स्थान में हुआ था। इनकी माता का नाम मीनल देवी था और पिता वीरभक्त थे। जिन्हें नाथपन्थी से दीक्षित माना जाता है। लीरलबाई की अनेक लघु कृतियाँ प्राप्त होती है, किन्तु जीवन-वृत्तान्त कम उपलब्ध होता है। उनके गीतों में पिता-पुत्री के भजन संवाद का प्रसंग भी मिलता है। उनकी आध्यात्मिक चर्चा सौराष्ट्र के नाथपन्थ देवायन से भी प्राप्त होता है, जिनसे लीरलबाई का सत्संग भी होता था।

गुजरात या सौराष्ट्र का नाम ध्यान में आते ही नरसी मेहता और महात्मा गाँधी के गुजरात का स्मरण आ जाता है। सौराष्ट्र की धरती पर 1413 ई. में जन्म लेने वाले भगत नरसी मेहता हैं। इनका कहीं-कहीं नाम नरसिंह मेहता भी मिलता है। इनका जन्म गुजराती ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी माता का नाम दया कुँवरि और पिता का नाम कृष्णदामोदर या कृष्णदत्त था। बाल्यकाल में पिता का देहान्त हो गया। नरसी जी 8 वर्ष तक गूँगे थे। बड़नगर के नागरवंशी कुलीन ब्राह्मण नरसी मेहता प्रारम्भ में गोपीनाथ महादेव के उपासक थे। यहाँ किसी कृष्ण भक्त सन्त के कारण

6. वही, पृ.109
7. वही, पृ.109
8. सन्त मूलदास-प्रीतम बरनी चुन्दादी, भजन के पद

इन्हें मृदुल वाणी प्राप्त हो गई। तब से संत-भक्तों के सानिध्य एवं भगवत-भजन में व्यस्त रहने लगे। इनका विवाह माणिकबाई से हुआ था, जिनसे दो संतानें थीं- कुंवरबाई और शामलदास। विवाह हो जाने पर भी इनका मन गृहस्थ जीवन में नहीं लगता था। इसलिए इनको अपनी भाभी से अकर्मण्य का ताना बहुत मिलता था। यही इनके वैराग्य का मुख्य कारण बन गया। भाभी के व्यंग्य-बाण के कारण घर का त्यागकर दिया और शिवशंकर भगवान की अहर्निश भक्ति में लग गये। सातवें दिन भगवान आशुतोष ने दर्शन दिया और अपने ईष्ट भगवान श्रीकृष्ण की लीलास्थली वृन्दावन ले गये और रासलीला का साक्षात्कार कराया।

सामाजिक अस्पृश्यता का दूसरा प्रसंग प्राप्त होता है। धार्मिक यात्रा में भाई के साथ आते समय दोनों को भूख लग गई। वे लोग किसी गांव में गये, वहाँ हरि के जन (चमार) थे, जिससे भाई ने भोजन नहीं किये, किन्तु इन्होंने भोजन कर लिया। जब आगे बढ़ते हैं तो न गांव है, न हरिजन। उनके जीवन में छन्द बहुत प्रसिद्ध है कि पर्वत की तलहटी में जो दामोदर कुण्ड है। वहीं नरसी मेहता स्नान करता है और दृढ़ भक्ति भाव वाले हरिजन (शूद्र) के पाँव पड़ता है-

गिरि तलेटी ने कुण्ड दामोदर
त्यां मेहता जी नहावा जाय।
ढेढ़ वरण मो दृढ़ हरिभक्ति (ते)
प्रेम धरी ने लाग्या पाय॥[9]

नरसी मेहता न केवल भक्त-सन्त थे, अपितु उनकी रचनाओं में समाज-सुधारक का भाव भी देखा जाता है। वास्तव में, वे बड़े कवि और सहृदय महामानव थे, जो कभी भी कुलीन घर का ब्राह्मण होने का अहंकार नहीं आया। वे तो उच्च ब्राह्मण के घरों में उसी भाव से प्रभु का भजन-कीर्तन करते थे, जैसे- किसी हरिजन या निम्न जाति के घरों में करते थे। उन्होंने सामाजिक समता-समरसता के लिए अनेक कार्य किये जिसे उनकी रची वाणियों, पदों एवं कृतियों में स्पष्ट मालूम होता है। महात्मा गाँधी को उनका पद बहुत अच्छा लगता था। उनके पदों में से ही उन्होंने 'हरिजन' शब्द लिया है। उनकी यह प्रसिद्ध उक्ति विश्वविख्यात है-

वैष्णव जन तो तेने कहीए, जे पीड पराई जाणे रे।
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोक मां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे।
वाच काच मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेने रे॥[10]

भगत नरसी मेहता का सौराष्ट्र में वही स्थान है, जो उत्तर भारत में भक्त सूरदास जी का। इन्हें गुजरात का महाकवि कहा जाता है। इन्होंने अपने गुजराती भाषा में कुल नौ रचनाओं को लिखा है। जिनमें- सुरत संग्राम, गोविन्दगमन, चातुरी छब्बीसी, चातुरी, षोडशी, दाणलीला, सुदामाचरित्र, रास सहस्रपदी, श्रृंगारमाला, बाललीला। इनके अतिरिक्त कुछ फुटकल रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं- हींडोलाना पदो, भक्ति ज्ञानानां पदो, कृष्ण जन्म समेनां पदों, बसंतनां पदो, कृष्णजन्म बधाईनां पदो इत्यादि।

इनके जीवन के अनेकानेक प्रसंग मिलते हैं। तीन जन्मों की कथा- गोलोक गमनागमन, भगवत वरदान, कथा हुण्डी। इन्हें गुजराती भाषा का आदिकवि और वाल्मीकि माना जाता है। इन्होंने सम्पूर्ण रचना की विषयवस्तु कृष्ण लीलागान रखा, किन्तु इनके पदों में यत्र-तत्र राष्ट्रभक्ति के स्वर भी सुनाई देते हैं।

9. डॉ. आर एस. प्रजापति- रामानंद संप्रदाय और साहित्य, पृ.304
10. विवेक जितेन्द्र देसाई- (प्रकाशक)- आश्रम भजनावलि-गुजराती-भजन-102, पृ. 168

भरतखण्ड भूतल माँ जनमी
जेणे गोविन्दना गुण गाया रे।
धन-धन रे एनां मात-पिता ने,
सफल करी ऐने काया रे॥[11]

इनका निधन छाछठ वर्ष की अवस्था में 1480 ई. में हो गया था।

नजीर अकबराबादी ऐसे शायर हुए हैं, जिन्होंने भारत के अनेक सन्तों की अमर जीवनगाथा को अपनी कविता में पिरोया है। उन्होंने नरसी मेहता के जीवन आदर्श को तैंतीस बन्द में अद्भुत रूप में वर्णित किया है

दुनिया के शहरों में मियाँ
जिस-जिस जगह बाजार हैं।
किस-किस तरह के हैं हुनर,
किस-किस तरह के कार हैं॥

× × ×

सब तज दिया हरि ध्यान में,
यह पीत का ठहरा जतन।
करते भजन श्रीकृष्ण का,
हर हाल में रहते मगन॥
नरसी की परसी हो गई,
देकर मदनमोहन को मन।
चाहत में साँवल साह की,
अपना भुलाया तन बदन॥
सब भगत बातें साथ लीं,
जो इष्ट में दरकार है॥[12]

सौराष्ट्र में स्वामी रामानन्द का प्रभाव बहुत था। इनके शिष्य-प्रशिष्यों ने भक्ति जागरण एवं सामाजिक उत्थान में बहुत योग दिया। इसी प्रकार उन्हीं की सन्त परम्परा में कवि-हृदय सम्पन्न पन्द्रहवीं शताब्दी में सन्त पद्मनाभ हुए। इनका जन्म 1443 ई. गुजरात के पाटण जिले में एक प्रजापति जाति कुम्हार परिवार में हुआ था। रामानन्द सम्प्रदाय और साहित्य के लेखक डॉ. आर.एस. प्रजापति ने उनके एक छन्द को उद्धृत किया है, जिनका कहना है कि 'शारदा के तट पर बिना विलम्ब करके जाओ। पाटण शहर के मध्य पद्म नामक कुम्हार जाति के भक्त हैं। करण कर्ता-धर्ता (ब्रह्म) पिता हैं, लक्ष्मी जिसकी माता पाताल की पटराणी हैं, मैं जाकर उन्हीं हरि के पाँव पड़ता हूँ।'

शारदा ने तीरे जाओ, वेत्रे न लाओ बार।
पाटण मध्ये पद्म कहीए, जाणीए कुम्भकार॥
करण कारण पिता जेनो, लक्ष्मी जेनी माय।
पातालदे पटरागणी, जई लागू हरि ने पाय॥[13]

सन्त पद्मनाभ की रचनाओं से ज्ञात होता है कि उनमें राष्ट्रीयता का भाव भी विद्यमान था। 1456 ई. में सन्त पद्मनाथ द्वारा लिखी गई 'कान्हड़दे प्रबन्ध' उनकी प्रसिद्ध काव्य रचना है, जिसमें इन्होंने जालौर के राजा कान्हड़दे के राज्य पर मुगल शासक अलाउद्दीन खिलजी के अत्याचार एवं आक्रमण का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है। यह वीर रस की उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। इन्होंने समाज एवं राष्ट्र जागरण में अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया था। सन्त पद्मनाभ जी ने अपने 65 वर्ष की अवस्था में परम धाम को प्राप्त किया है।

गुजराती सन्तों में सन्त माण्डण का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। इनका जन्म 1479 ई. में गुजरात में हुआ था। इनके माता का नाम मेघू और पिता का नाम हरि ज्ञात होता है। प्रायः सन्तों ने विराग भाव के कारण अपने विषय में कुछ परिचयात्मक विवरण नहीं लिखा है। उसी परम्परा में माण्डण ने भी अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। सन्त माण्डण

11. रामलाल- भारत के सन्त महात्मा, पृ.214
12. श्री कृष्ण बनारसी, नजीर ग्रन्थावली भाग-2, बन्द- 13

के विचार और भक्तिभाव स्वामी रामानन्द एवं कबीर साहब से अधिक मेल खाते हैं। किन्तु सन्त माण्डण ने स्वयं को श्रीजोशी मदन का शिष्य घोषित किया है। निर्गुण सन्तों की भाँति जाति-पाति, बाह्याडम्बर एवं कर्मकाण्ड का विरोध करते हुए सन्त माण्डण ने परम ब्रह्म राम की भक्ति के साथ, नाम एवं गुरु महिमा का गान किया है। इनकी यह प्रसिद्ध पंक्ति गुजरात के जन-मन में अधिक प्रसिद्ध है-

भजन करो राम का भाई,
छांड सब तन की चतुराई॥

× × ×

हिन्दू सोई धर्म कूँ जाणे,
चले हक सो मुसलमाने॥

× × ×

मांडण की यही चतुराई,
सुनो हो याद सुन भाई॥[14]

सन्त माण्डण के देहान्त का समय ज्ञात नहीं होता है, किन्तु इन्होंने अपना पूर्ण जीवन व्यतीत किया था।

प्रायः भक्तों-सन्तों का ऐतिहासिक तथ्य बहुत कम प्रामाणिक मिलता है। सन्त दादूदयाल जी का जन्म इसी प्रकार संदिग्ध प्राप्त होता है। इनका जन्म 1544 ई. में अहमदाबाद-गुजरात प्रान्त में हुआ था। कबीर की भाँति इन्हें किसी ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न माना जाता है। इनके पालक पिता लोधीराम ब्राह्मण थे, जिन्होंने साबरमती के किनारे कमल पर बैठे हुए पुत्र को प्राप्त किया था। प्रिय वस्तु पाने के कारण 'दादू' नाम रखा और 'दया' की भावना होने से 'दादू दयाल' कहलाये।

दादू की जन्मस्थली गुजरात थी, किन्तु कर्मस्थली राजस्थान हो गया। मात्र बारह वर्ष की अवस्था में ही दादू जी गृहस्थ जीवन को छोड़कर ईश्वर भजन में रमने लगे। अपने अहमदाबाद जन्मस्थल से राजस्थान के आबू पर्वतमाला, पुष्कर, करडाला में कई वर्षों तक साधना-तपस्या की। दादू पन्थ की मान्यतानुसार, इनकी साधना में इन्द्र ने अप्सराओं के द्वारा बाधाएँ पहुँचाई गईं। इन्होंने सन् 1568 ई. में राजस्थान के साँम्भर स्थान और तत्पश्चात् आमेर जिलों में अपना आश्रम बनाया। लगभग 24 वर्ष की अवस्था में ही सन्त दादू जी की प्रतिष्ठा फैलने लगी, इनकी भक्ति एवं प्रभाव के कारण तत्कालीन राजा अकबर ने दादू से उपदेश ग्रहण किया था और 40 दिनों तक दादू का सत्संग प्राप्त किया। अकबर ने दादू की कीर्ति और उपदेश से बहुत प्रभावित हुआ। दादू के उपदेश से ही अकबर ने अपने शासन काल में गो-हत्या का प्रतिबन्ध लागू किया था।

अन्तिम समय में दादूदयाल ने जयपुर के पास नरैना नामक स्थान पर अपना आश्रम बनाया। उन्होंने यहाँ 'खेजड़ा' नामक वृक्ष के नीचे तपस्या की। इसी स्थान पर 'ब्रह्मधाम-दादू' द्वारा की स्थापना हुई थी। सन् 1603 ई. में दादूदयाल जी ने 'सत्यराम' की वाणी बोलते हुए नरैना में समाधि ले ली थी। सन्त दादूदयाल की साधना अद्वैत ब्रह्मवादी थी। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'दादूदयाल ग्रन्थावली' में ब्रह्मतत्त्व का छन्द उद्धृत है-

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा प्यंड पुरान।
सब कुछ तेरा, तू है मेरा, यह 'दादू' का ज्ञान॥[15]

दादूदयाल के विषय में डॉ. वासुदेव सिंह ने लिखा है- 'दादू भी गृहस्थ और अविवाहित थे। प्रसिद्ध सन्त गरीबदास इनके पुत्र बताये जाते हैं। ये 6 वर्ष साँभर में रहे। वहीं पर इन्होंने 'ब्रह्म सम्प्रदाय' की स्थापना की, जो आगे चल कर 'दादू पन्थ' के नाम से विख्यात

13. डॉ. आर.एस. प्रजापति- रामानन्द सम्प्रदाय और साहित्य, पृ.135
14. वही, पृ.305
15. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी- दादूदयाल ग्रंथावली, पृ. 64

हुआ। ..... रामानन्द के शिष्य कबीर हुए, कबीर के कमाल, कमाल के जमाल, जमाल के विमल और विमल के बूढ़न। यही बूढ़न दादू के गुरु बताये जाते हैं।'[16]

ब्रह्म सम्प्रदाय का प्रभाव मध्यकाल में बहुत बढ़ने लगा था। इस सम्प्रदाय ने मूर्तिपूजा एवं जाति-पाँति का विरोध किया। परिणामस्वरूप इस सम्प्रदाय में हिन्दू-मुस्लिम जातियों से अनेक सन्त दीक्षित हुए। अनेक मुस्लिम, हिन्दू जाति में आये और हिन्दू धर्म को अपनाया। मध्यकालीन सन्तों की शिष्य परम्परा में दादू सम्प्रदाय में शिष्यों की सर्वाधिक संख्या मानी जाती है। स्वयं दादू जी ने 152 शिष्यों को दीक्षित किया था, जिसमें 52 प्रधान शिष्य हुए। इनके प्रमुख शिष्यों ने उत्तर-मध्य भारत में अनेक आश्रम, गद्दियों और थामों की स्थापना की थी। आगे चलकर इनका सम्प्रदाय छः भागों में बँट गया-लालसा, विरक्त, तपस्वी, स्थानधारी, खाकी, नागा। इनके तीन प्रधान शिष्य बहुत महान हुए। इन्होंने साहित्य और समाज के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। सन्त सुन्दरदास ने संस्कृत के शास्त्रों का काशी में अध्ययन किया और अनेक ग्रन्थों का संकलन-सम्पादन किया। इसी शिष्य परम्परा में जगजीवनदास शास्त्रार्थी और निश्चलदास दार्शनिक हुए। इन लोगो ने संत-कवियों की वाणियों का संकलन करके हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की थी। 'दादू अनुभव वाणी' नाम से रज्जब ने दादू की रचनाओं का संकलन तैयार किया, जिसमें लगभग पाँच हजार दोहे हैं।

सौराष्ट्र में भगत अखा का नाम बहुत विख्यात है। इन्हें गुजराती भाषा का महान कवि माना जाता है। इन्होंने हिन्दी के कबीरदास की भाँति गुजरात में सामाजिक जागरण का अद्भुत कार्य किया है। इसलिए गुजराती भाषा के पुराकाव्य रचयिताओं में इनका उल्लेखनीय स्थान है क्योंकि वे अपने कालखण्ड के सर्वोत्तम प्रतिभा सम्पन्न भक्त-कवि साहित्यकार थे। भगत अखा का जन्म 1591 ई. में गुजरात के अहमदाबाद के सन्निकट जेतलपुर ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम रहियो या रहियादास था। इनके पिता और माता का देहान्त बाल्यावस्था में हो गया था। किन्तु बाल्यावस्था में विवाह होने के कारण आजीविका के लिए अहमदाबाद में देसाई की पोल में रहने लगे थे। इनका व्यवसाय पैतृक स्वर्णकार का कामकाज था। इसलिए इन्हें 'अखेराय' नाम से भी जाना जाता था। वे बहुत दिनों तक टकसाल में भी नौकरी किये।

सन्त अखा के वैराग्य के विषय में बताया जाता है कि एक दिन एक स्त्री ने कुछ रुपये देकर सोने में कण्ठमाला बनाने के लिए निवेदन किया। सन्त अखा ने अपनी तरफ से सौ रुपये का सोना लगाकर कण्ठमाला तैयार करके दे दिया, लेकिन महिला को विश्वास नहीं हुआ। अखा जी उसको अपनी बहन मानते थे। इस अविश्वास से दुःखी होकर अखा ने स्वर्णकार का व्यवसाय छोड़ दिया। सुनारी का सामान कुएँ में फेंकर, जमीन-जागीर बेचकर वैराग्य ले लिये और सद्गुरु की खोज में निकल गये।

अखा भगत को कृष्ण की प्रेमभक्ति का जागरण हुआ और अपना नाम, वेष बदलकर एक मंदिर में गये। वहाँ के पुजारी ने निम्न जाति का समझकर इन्हें भगा दिया। उन्होंने पुजारी से एक साखी में कहाँ कि आप धनवानों को अपनाते हैं, निर्धनों को क्यों अपनायेंगे-

गुरु कीधा में गोकुलनाथ घरदा बलदने घालीनाथ।
धन धोको नव हरे, एवो गुरु कल्याण शुं करे॥[17]

सन्त कवि अखा की वैचारिकी बहुत तीक्ष्ण एवं प्रहारक थी। इन्होंने अपने जीवन में बहुत सामाजिक ठोकरें खायी थीं, इसलिए इनकी रचनाओं में अनेक

16. डॉ. वासुदेव सिंह- हिन्दी सन्त काव्य: समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 70
17. सन्त अखा- अखा की हिन्दी कविता, पृ.04

सामाजिक अनुभव विद्यमान हैं। गुजराती भाषा के आदिकालीन कवियों की प्रथम पंक्तियों में कवि अखा की गणना की जाती है। इनकी कृतियों में 'गीता' और 'अनुभव-बिन्दु' में अनेक सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन और विरोध की बातें लिखी गई हैं। सन्त कबीर की भाँति उनकी प्रहारात्मक भाषा के प्रयोग का एक ज्वलन्त उदाहरण देखा जा सकता है-

लंठ कहो कोऊ भंड कहो।
पाषंड कहो कोऊ कहो जू भिखारी।
सज्जन कहो दुरीजन कहो।
चोर कहो कोई कहो ब्रह्मचारी।
कोऊ के पाओ टिकै नहिं ताहालूं।
जहाँ जाय कीनी अखे जु पधारी।
जिन्ये जैसो देख्यो त्येने तैसो ध्यायो।
बोहोत रहे जू बीचार बीचारी॥[18]

इस रचना की साम्यता गोस्वामी तुलसीदास की 'कवितावली' से की जा सकती है-

धूत कहौ, अवधूत कहौ,
रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब,
काहू की जाति बिगार न सोऊ॥

× × ×

मेरी जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति
मेरे कोऊ कामको न हौं काहू के काम को।.....
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोचु कहा,
का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को॥[19]

अखा की हिन्दी कविताओं में श्री एकलक्ष रमणी, कुंडलिया, धुआसा, जकड़, झूलड़, ब्रह्मलीला, पद, भजन, सन्त प्रिया, साखियाँ एवं अक्षर रस को स्थान दिया गया है। इनकी रचनाओं से गुजराती साहित्य समृद्ध हुआ और भारतीय समाज की नई दिशा में नव जागरण हुआ। इन रचनाओं के माध्यम से सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेदन हुआ। गुजराती ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र सन्त अखा की सामाजिक चेतना की जागृति में अमूल्य योगदान मानता है। गुजरात की धरती पर उत्पन्न हुए महात्मा गाँधी जी ने अपना सौभाग्य मानते हुए नरसी मेहता, अखा जैसे संत-भक्तों को अपने जीवन का प्रेरणा स्रोत बताया है। सन्त अखा का देहान्त 82 वर्ष की अवस्था में 1673 ई. में गुजरात में हुआ है।

"काशी के मणिकर्णिका घाट पर ब्रह्मानन्द सरस्वती के आश्रम में गये, वहाँ स्वामी जी ने अखा को शूद्र जाति का जानकर भी अपना लिया। सन्त अखा के मुख से बरबश एक साखी निकल पड़ी-"

सन्त अखा गुजरात छोड़कर तीर्थाटन करते हुए अपने गोकुलनाथ की नगरी मथुरा के निकट गोकुल आ गये। यहाँ वल्लभाचार्य के पुत्र गोकुलनाथ ने अखा को वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित कर दिया, किन्तु वे यहाँ अधिक नहीं रहे और सद्गुरु की खोज करते हुए विद्वानों की नगरी काशी चले गये। काशी के मणिकर्णिका घाट पर ब्रह्मानन्द सरस्वती के आश्रम में गये, वहाँ स्वामी जी ने अखा को शूद्र जाति का जानकर भी अपना

18. वही, पृ.507
19. गोस्वामी तुलसीदास- कवितावली, छंद- 106-7
20. सन्त अखा- अखा की हिन्दी कविता, पृ.16

लिया। सन्त अखा के मुख से बरबश एक साखी निकल पड़ी-

गरवा गुरु मल्या रे, एवा सत-निरंजन देव।
जेने जात वरण आश्रम नहीं ने सहेज पणे अवधूत॥[20]

भगत अखा ने काशी में तीन वर्ष तक निवास किया। यहाँ सत्संग, गंगा स्नान, ब्रह्मज्ञान का चिन्तन करते हुए अनेक शास्त्रों का पारायण किया। धीरे-धीरे इनकी ख्याति से अन्य वेदान्ती-शास्त्री और पुजारी ईर्ष्या करने लगे। कालान्तर में एक भक्त के आग्रह पर अखा जी ने काशी भी छोड़ दिया। तब वे पंजाब चले गये। पंजाब में 53 वर्ष की अवस्था में इन्होंने रचनाएँ करना आरम्भ किया। इन्होंने पंजाब में 'झूलणा' नामक रचना की। इसमें कबीर की रमैनियों की भांति जाति-पाति, ऊँच-नीच एवं बाह्याडम्बर का विरोध किया है।

चौदह लोग अखा एक ठाठ।
तेमा ऊँच-नीच ते मन नो घाट॥[21]

सन्त अखा कई मठ-मन्दिरों से होते हुए जगन्नाथपुरी भी गये थे। वहाँ भगवान जगन्नाथ ने अपने भगत अखा को दर्शन दिया था। तब उन्होंने लिखा था-

सच्ची शीतलता अखा सद्गुरु केरे संग।
और गुरु संसार के पोषत हैं भवरंग॥[22]

सन्त अखा ने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में अनेक रचनाएँ लिखी हैं, जिनकी मुख्य रचनाएँ- गीता, अनुभव-बिन्दु, गुरु महात्म्य, गुरु गोविन्द-एकता, मायानुं-स्वरूप, सर्वात्मभाव, प्रेमलक्षणा, जीवन्मुक्त-दशा, ब्रह्मवस्तु-निरूपण, ब्रह्म ईश्वर जीवनी एकता, वितण्डावादो नुं वर्णन, षड्दर्शन चिकित्सा, सत्संग-महत्ता आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी हिन्दी रचनाओं को 'अक्षर-रस' नाम से संकलित-प्रकाशित किया गया है। पंजीकरण, गुरु-शिष्य संवाद, चित्तविचार संवाद को भी इनकी रचनाएँ मानी जाती हैं।

सौराष्ट्र में सन्त मेकरणदास ने अपनी त्याग-तपस्या से अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधार किये। आज भी उन्हें कच्छी सन्त या सन्त मेकरणदास के नाम से सम्पूर्ण गुजरात में जाना जाता है। उनका जन्म 'अहीर' जाति में गुजरात के कच्छ की नानी खोमड़ी नामक एक गरीब परिवार में हुआ था। इनकी माता का नाम पावांबा और पिता का नाम भट्टी हरदोल था। ये दो भाई थे। इनकी अहीर जाति और खोमड़ी गाँव में अनेक सामाजिक रूढ़ियाँ विद्यमान थीं, जिन्होंने अपना गृह परित्याग करके उन विसंगतियों को दूर करने का संकल्प ले लिया। उन्होंने सामाजिक सुधार करने हेतु अपने आध्यात्मिक गुरु श्री गंगोजी से दीक्षा प्राप्त कर ली, किन्तु मेकरण का छोटा भाई एक फकीर औलिया शाह कलंदर के द्वारा पीर पंतग शाह नाम से मुस्लिम बन गया। इसको इन्होंने अपने प्रभाव एवं हिन्दू धर्म की महानता का बखान करके घर वापसी कराया।

अपने गांव की गरीबी को दूर करने के लिए सन्त मेकरण दादा गिरनार आये। काँवर लेकर दिन-भर भिक्षाटन करते थे और गांव के गरीब लोगों को रोटियाँ बाँटते थे। रात में भजन, दिन में भिक्षाटन; यह उनका नियमित कार्य कई वर्षो तक चलता रहा।

डॉ. विठ्ठल भाई ठुमार ने 'सन्त कवि मेकरण दादा : जीवन और कवन' में उनकी जनसेवा के विषय में लिखा है-

शूरवीर अरु सन्त को वन में नहीं रहना।
जनसेवा के साथ में राम भजन करना॥[23]

क्योंकि सन्त मेकरण जी मानते थे कि किसी को धन प्रिय होता है तो किसी को अच्छी बातें, मेरी तो

21. सन्त अखा- झूलणा, पृ.45 22. वही, पृ.103
23. डॉ. विठ्ठल भाई ठुमार - 'सन्त कवि मेकरण दादा : जीवन और कवन, पृ.24

केवल एक ही इच्छा है कि समाज में जो सबसे निम्न हैं उन्हीं से मैं प्यार करता रहूँ। इसी समाज-सेवा में महात्मा गाँधी बहुत प्रभावित हुए। कालान्तर में, महात्मा गाँधी ने दीन-दुखियों की सेवा के लिए साबरमती आश्रम बनाया था।

सन्त मेकरणदास उत्तर भारत के प्रसिद्ध सन्त गोस्वामी तुलसीदास से बहुत प्रभावित प्रतीत होते हैं, क्योंकि जिस प्रकार से काशी में गोस्वामी तुलसीदास ने सनातन धर्म की रक्षा के लिए अखाड़ों और रामलीला केन्द्रों की स्थापना की थी, उसी प्रकार सन्त मेकरणदास ने चार अखाड़ों की स्थापना के द्वारा समाजसेवा का अद्भुत संदेश दिया था। सर्वप्रथम इन्होंने 'विल्खा अखाड़ा' का सृजन करके निम्न वर्ग की कुम्हार और चर्मकार जातियों को लाया। तत्पश्चात् दूसरा 'लोड़ाई अखाड़ा' की स्थापना मरुस्थल के निकट में किया और इस अखाड़े के माध्यम से जल के अभाव और भुखमरी की समस्या को दूर किया। अपने गांव की भाँति इन्होंने यहाँ भी भिक्षाटन में रोटी और गधे के ऊपर मशक में पानी लाकर "जन सेवा, नारायण सेवा" के मन्त्र को चरितार्थ किया। ये तीर्थाटन में जाने वाले पथिकों को भी रोटी-पानी से सेवा करते थे। इसी प्रकार तीसरे 'जंगी अखाड़े' के द्वारा इन्होंने जागीरदारों के शोषण और अहिर जाति की विषमताओं को दूर करने का प्रयत्न किया। सन्त मेकरणदास ने चौथा- 'धूंग अखाड़ा' बनाया। यहाँ भी मरुस्थल था। इनके प्रयास से जल का संकट दूर हुआ। सन्त मेकरणदास ने जल ही जीवन है, का सन्देश दिया। इन्होंने चर्मकारों को अपने हिन्दू समाज का अभिन्न घटक बताकर सामाजिक बुराइयों को दूर किया। ये हरिजन बन्धुओं को दीक्षा देकर सन्त बनाते गये। ये आज भी घरबारी सन्त कहलाते हैं। इस एक घटना से इनकी महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है कि 1729 ई. को धूंग अखाड़े में इनके समाधि ले ले ली थी, तब इनके अनुयाइयों ने सन्त मेकरणदास के प्रयाण के समय ग्यारह लोगों ने भी समाधि ले ली थी। इनके जीवन से प्रभावित सामाजिक सन्तों ने इसी प्रकार सभी अखाड़ों में इनकी स्मृति एवं वियोग में अनेक सन्तों भक्तों ने अपना प्राण त्याग दिया था। डॉ. आर.एस. प्रजापति के 'रामानन्द सम्प्रदाय और साहित्य' के एक उदाहरण में सन्त मेकरणदास को 'नाथ-सम्प्रदाय' के मछिन्दरनाथ का बेटा ज्ञात होता है-

मेका बेटा मछन्दर का, रामानन्द का कबीर।
आद अन्त फिरता रहा, फरता राम कबीर॥[24]

गुजराती साहित्य भक्ति काव्य की दृष्टि से बहुत ऊर्जस्वित एवं प्रेरणादायी है। यहाँ की सन्त परम्परा में भक्त कवि प्रेमानन्द का उच्च एवं उत्तम स्थान है। इनका जन्म 17वीं शताब्दी में बड़ौदा नगर के नागर ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये अपनी विद्या एवं स्वाध्याय से गुजराती, हिन्दी और संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पंडित हो गये थे। यही कारण है कि इन्होंने संस्कृत के महनीय आर्षकाव्यों- रामायण, महाभारत, भागवत और मार्कण्डेय पुराण पर अवलम्बित कई दर्जन आख्यान काव्यों की रचना की है। गुजराती साहित्य में इनकी विपुल रचना के कारण इनका स्थान सिरमौर माना जाता है। इन्होंने गुजराती साहित्य में भावगाम्भीर्य के साथ-साथ अलंकृत शैली में काव्य रचनाएँ की हैं। इन्हें गुजराती नाट्य विधा का जनक माना जाता है। नाट्य रचना के क्षेत्र में इनकी तीन कृतियाँ उल्लेखनीय हैं-

1. सत्यभामाख्यान, 2. चालीप्रसन्नाख्यान, 3. तपत्याख्यान।

अन्य आख्यानों पर आधारित काव्य- ओखाहरण, अभिमन्यु आख्यान, नलाख्यान, चन्द्रहासाख्यान,

24. डॉ. आर.एस. प्रजापति- रामानन्द सम्प्रदाय और साहित्य, पृ.280

मदालसाख्यान, सुधन्वाख्यान, नासिकेतोपाख्यान आदि प्रसिद्ध हैं।

भारतीय सन्त परम्परा में कई संतों, सिद्धों का नाम एक समान मिलता है। विशेष रूप से आनन्द विशेषण संज्ञक नाम अधिक मिलते हैं। जब से रामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई है तब से 'आनन्द' संज्ञक नाम सन्त बहुतायत प्राप्त होते हैं। मैंने गुजरात के स्वामी मुक्तानन्द का अध्ययन करते हुए सन्त मुक्तानन्द का परिचय प्राप्त किया। मंगलूर (मद्रास) में 16 मई, 1908 को सन्त मुक्तानन्द का जन्म हुआ, जिन्होंने 'सिद्धयोग' नामक संस्था की स्थापना की थी। इन्होंने कई किताबों का सृजन किया था, जिनमें 'कुण्डलिनी शक्ति', वेदान्त, कश्मीर शैवागम जैसे प्रमुख अंग्रेजी ग्रन्थ हैं। इनका देहान्त 23 अक्टूबर, 1982 ई. में हुआ था।

गुजरात के स्वामी मुक्तानन्द जी मद्रासी सन्त मुक्तानन्द से पृथक् हैं। ये स्वामी नारायण सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी सहजानन्द के गुरुभाई थे। स्वामी मुक्तानन्द ज्ञानमार्गीय न होकर परम वैष्णव भक्त और कृष्ण आराधक थे। इनकी आध्यात्मिक साधना वैयक्तिक मात्र नहीं थी, अपितु इनमें 'नर सेवा, नारायण सेवा' की असीम भक्ति भी थी। ये सदैव यही कहते थे कि 'हरिजन संगे राखो पूरणप्रीतड़ी, त्योगो मद मत्सर झूंठी कुल लाज जो।' इन्होंने अपनी रचना का माध्यम हिन्दी भाषा चयनित किया था। 'हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास' ग्रन्थ में 'विवेक चिंतामणि' एवं 'सरभंग शिरोमणि' इनकी रचना प्राप्त होती है। इसमें यह उदाहरण प्राप्त होता है-

छाड़ि के घनश्याम और को धरूँ जो ध्यान,
फाड़ डारो छाती मेरी कठिन कुठार सों॥[25]

स्वामी मुक्तानन्द का जन्म 1761 ई. में हुआ था और लगभग सत्तर वर्ष की अवस्था में 1830 ई. में गोकुल धाम में प्रयाण हुआ था।

सन्त गिरधर का गुजरात के सन्तों में उत्कृष्ट स्थान है। जिस प्रकार संस्कृत के कवि वाल्मीकि का रामायण, हिन्दी के कवि गोस्वामी तुलसीदास का श्रीरामचरितमानस अत्यन्त प्रसिद्ध है, उसी प्रकार से गुजरात के गिरधर का 'रामायण' गुजराती भाषा में प्रख्यात है। परम वैष्णव भक्त-कवि गिरधर का जन्म 1787 ई. में हुआ था और उनका निर्वाण 1852 ई. में हुआ। उन्होंने संस्कृत और हिन्दी रामायण की भांति सात काण्डों में गुजराती रामायण की रचना 1837 ई. में की थी। भारतीय रामकाव्य की परम्परा में- 'गिरधर रामायण' का विशेष महत्त्व माना जाता है। इन्होंने इसके अतिरिक्त 'राधा विरह बारामास', 'तुलसी विवाह', 'अश्वमेध' और 'राजसूय यज्ञ' जैसी कृतियों की सर्जना की थी।

सन्त गिरधर का रामायण गुजरात के घर-घर में मन्त्र जाप की तरह पाठ किया जाता है। समाज की एकता में 'गिरधर रामायण' का विशेष महत्त्व है।

भारत के इतिहास में स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम प्रत्येक जिह्वा पर विद्यमान है। 'कृण्वन्तो विश्वमाऽर्यम्' और 'वेदों की ओर लौटो' का उद्घोष करने वाले 'मूल शंकर' का जन्म महाशिवरात्रि के दिन 12 फरवरी, सन् 1824 में टंकारा (राजकोट) गुजरात में हुआ था। शुद्ध वैदिक ब्राह्मण परिवार में जन्मे स्वामी दयानन्द जी के पिता का नाम करशन लाल जी तिवारी और माता का नाम यशोदाबाई था। गुजरात में पिता कर-आयुक्त (टैक्स कमिश्नर) होने के कारण स्वामी दयानन्द का बाल्यकाल अत्यन्त सुखमय बीता था। वैदिक संस्कारों के साथ-साथ इन्होंने संस्कृति एवं वेद शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था।

मूल शंकर का बाल्यास्था में महाशिवरात्रि के दिन

25. डॉ. भगीरथ मिश्र - (सं) हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-सप्तम, पृ. 256

शिवलिंग पर चढ़े प्रसाद चूहे द्वारा खाते देखकर ईश्वर के प्रति विश्वास समाप्त हो गया। कालान्तर में, अपने चाचा एवं छोटी बहन का प्लेग (हैजा) में मृत्यु हो जाने के कारण मन उदास हो गया, जिससे पिता ने उनके विवाह की योजना बनाई थी कि मूल शंकर 21 वर्ष की आयु में घर छोड़ दिया। मूल शंकर ने स्वामी पूर्णानन्द से दीक्षा लेकर स्वामी दयानन्द बन गये और 1846 ई. में वे सत्य की खोज के लिए निकल गए। उन्होंने भारत के अनेक तीर्थों का भ्रमण किया। 1860 ई. में भ्रमण करते हुए मथुरा पहुंचे, जहाँ वेद-वेदान्त प्रवीण स्वामी विरजानन्द मिलें। स्वामी विरजानन्द ने वेद-वेदान्त, पतंजलि योगसूत्र और पाणिनि व्याकरण में सिद्धहस्त बनाकर इन्हें वेदों के महत्त्व एवं वैदिक धर्म की सेवा करने का आदेश दिया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् सम्पूर्ण विश्व को श्रेष्ठ बनाने के लिए वैदिक संस्कृति की पुनर्स्थापना की। उन्होंने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का जयनिनाद करते हुए सभी को 'वेदों की ओर लौटने' का आवाहन किया और हरिद्वार में विशाल कुम्भ के अवसर पर शास्त्रार्थ किया। उन्होंने यहाँ 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' फहरायी और देश के अनेक धार्मिक स्थलों पर वैदिक शास्त्रार्थ किये। उन्हें सन् 1872 में ब्रह्म समाज के संस्थापक पंडित केशवचन्द सेन और पंडित देवेन्द्रनाथ ठाकुर का सान्निध्य मिला, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने अपनी भाषा एवं वेशभूषा में परिवर्तन किया। हिन्दी को समर्थ राष्ट्रभाषा मानकर अपने सम्प्रेषण का माध्यम हिन्दी को चयनित किया और इसी भाषा में लेखन करने का संकल्प लिया। जिसका ज्वलंत उदाहरण 'सत्यार्थ-प्रकाश' महनीय ग्रन्थ है।

इन्होंने इसमें तद्युगीन समस्त धार्मिक मतों, सम्प्रदायों एवं विचारों का सप्रमाण खण्डन करते हुए वैदिक सनातन धर्म एवं मानवता के धर्म की संस्थापना की है। इन्होंने ईसाई एवं मुस्लिम धर्म की घोर-भर्त्सना करते हुए रूढ़िवादी सनातन धर्म की प्रवृत्तियों पर भी कुठाराघात किया है। उन्होंने हिन्दू समाज में प्रचलित तंत्र-मंत्र, कर्मकाण्ड, बाह्याचार आदि सामाजिक भेदभाव को दूर करने के लिए 10 अप्रैल, 1875 ई. को मुम्बई में 'आर्य-समाज' की स्थापना की। उन्होंने मुम्बई से दिल्ली होते हुए पंजाब आदि क्षेत्रों में आर्य-समाज का विस्तार किया, जिससे भारत के पश्चिमी क्षेत्र में आर्य-समाज की गहरी जड़े आज भी विद्यमान है। भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों, अंधविश्वासों को दूर करते हुए उन्होंने दलितों का उद्धार किया और लाखों दलितों, शूद्रों को गले लगाया। वैदिक सनातन धर्म में परिवर्तित करते हुए उन्हें यज्ञोपवीत का संस्कार कराया और इन्हें संस्कृत और वेद अध्ययन करने का अधिकार प्रदान किया। स्वामी जी ने संस्कृत और वेद अध्ययन के विस्तार के लिए एंग्लों-वैदिक संस्था का प्रारम्भ किया, जिसमें गुरुकुल शिक्षा प्रदान की जाने लगी। गुरुकुल के माध्यम से वैदिक उपरोहितों को तैयार किया, उन्हें प्रवचन करने का प्रशिक्षण दिया, पुरुषों की भाँति महिलाओं को समान अधिकार देने वाले स्वामी दयानन्द ने प्रथम महिला गुरुकुल की स्थापना की और इन महिलाओं को संस्कृत और वेद अध्ययन की परम्परा शुरू की। भारत में महिलाओं को वेद पढ़ने-पढ़ाने से स्त्री समुदाय में महान क्रान्ति हुई। स्त्री शिक्षा, समाज सुधार के साथ-साथ स्वामी जी ने सामाजिक-समरसता एवं राष्ट्रीय एकता के लिए अभूतपूर्व कार्य किया। उन्होंने सती प्रथा, बलि प्रथा एवं बाल विवाह को समाप्त करने के लिए आन्दोलन चलाया तथा विधवा विवाह का श्रीगणेश किया। उन्होंने मध्यकालीन शासकों के अत्याचार के कारण धर्मान्तरण किये हुए मुस्लिम एवं ईसाई जाति के हिन्दुओं की घर-वापसी के लिए शुद्धि-आन्दोलन चलाया। इसके परिणामस्वररूप आर्य-समाज देश

व्यापी संगठन के रूप में खड़ा हो गया। हिन्दू समाज से कटे हुए लाखों लोगों ने अपने मूल धर्म को पुनः अपनाया। शुद्धि-आन्दोलन के द्वारा हिन्दुओं में समाज-जागृति और एकता का भाव आया और समरसता-समता में नवोन्मेष हुआ।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रखर राष्ट्रभक्त और क्रान्तिकारी राजनेता भी थे। भारत की धरती पर अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को भाँप चुके थे। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए 1857 की प्रथम क्रान्ति की योजना बनायी थी। उन्होंने राष्ट्रीय जनजागरण के लिए भारत के विभिन्न धर्मस्थलों की पदयात्रा करते हुए शास्त्रार्थ सभा, प्रवचन और संगोष्ठियाँ की। जनता में धर्मोदेश के साथ राष्ट्रवाद का मन्त्र फूँका। उन्होंने हरिद्वार के कुम्भ-मेले में नाना साहब, तात्याटोपे, बाला साहब, अजीमुल्ला खाँ, बाबू कुँवर सिंह के साथ गम्भीर मंत्रणा की थी और सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाकर भारत माता को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने की पृष्ठभूमि तैयार की थी।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में रोटी-कमल का संदेश देने वाले संन्यासियों की प्रेरणा स्वामी दयानन्द सरस्वती से मिली थी। इन संन्यासियों का मुख्य केन्द्र इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली) मेहरौली का योगमाया मन्दिर था। धार्मिक, सामाजिक और स्वतंत्रता आन्दोलन में अग्रणी भूमिका निभाने वाले दयानन्द सरस्वती ने राष्ट्रीय पशु गोमाता की रक्षा के लिए आन्दोलन किया था। इन्होंने गोरक्षा आन्दोलन पर केन्द्रित 'गोकरुणानिधि' का प्रणयन किया।

उन्होंने हिन्दी और संस्कृत भाषाओं में कुल चौदह रचनाएँ लिखीं, जिनमें 'सत्यार्थ-प्रकाश' और 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' विशेष प्रशंसनीय हैं। उन्होंने हिन्दी भाषा को 'आर्य-भाषा' नाम दिया। उनके बढ़ते हुए प्रभाव को देखते हुए कई धर्म वालों ने हत्या का षड्यंत्र किया, किन्तु वे महाराजा जसवन्त सिंह के आमंत्रण पर जोधपुर चले गये थे। राजा की नन्ही नामक वैश्या से उनका प्रेम देखकर स्वामी जी ने उन्हें बहुत शिक्षा दी। इससे दुःखी होकर वैश्या ने स्वामी जी को दूध में विष दे दिया। इससे दीपावली के दिन 30 अक्टूबर, 1883 ई. को इनका स्वर्गवास हो गया। उनकी अक्षयकीर्ति से हिन्दू समाज आज भी आलोकित है। उन्होंने असंख्य महापुरुषों का निर्माण किया। इसलिए वे अनेक राजनेताओं- स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय, वीर सावरकर, हरदयाल, परमानन्द, रामप्रसाद बिस्मिल के गुरु भी रहे। स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारत के आद्यनिर्माता, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के सर्वप्रथम क्रान्तिकारी, स्वदेशी-स्वराज के मंत्रदृष्टा भी थे।

गुजरात प्रान्त पश्चिम भारत का एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ भक्ति की सरिता उत्तरोत्तर प्रवाहित रही। अनेक संत-महात्माओं की यशकीर्ति से आज भी गुजरात सदैव आलोकित हो रहा है। स्वामीनारायण जी के द्वारा अक्षय कीर्ति के रूप में विद्यमान अक्षरधाम से भारतीय संस्कृति को देश-विदेश में नई पहचान बन रही है। इन सन्तों के द्वारा समाज, संस्कृति और साहित्य का बहुत उन्नयन हुआ है इन सन्त-भक्त कवियों से न केवल सामाजिक सद्भावना को संबल मिला है अपितु इनके द्वारा निरन्तर सामाजिक मूल्यों की रक्षा भी हुई है।

***

सन्त-मत ने लोक की भाषा में लोक को सनातन धर्म से जोड़ने का महनीय कार्य किया है जिससे सामाजिक समरता के सिद्धान्त कल्याणकारी सिद्ध हुए हैं। हमें आज उस मत की महती आवश्यकता है।

मानवेतर योनि के संत

विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक
"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो- जिला- गिरिडीह, (815301), झारखण्ड,

हिन्दी का सन्त शब्द संस्कृत के 'सन्' शब्द का तद्भव रूप है। इसकी व्युत्पत्ति अस् भुवि धातु से शतृ प्रत्यय लगाकर की गयी है। मेदिनी कोष में इसका अर्थ दिया गया है- सन्साधौ धीरशस्तयोः। मान्ये सत्ये विद्यमाने त्रिषु साध्व्युमयोस्त्रियाम्। इस प्रकार, साधुता, धीरता, प्राशस्त्य, मान्यता, तथा सत्यता ये सभी सन्त के गुण हैं। अतः हमने जहाँ जहाँ इन गुणों का अस्तित्व देखा उन्हें सन्त मान लिया है चाहे वे मनुष्येतर प्राणी, पशु, पक्षी या वनस्पति ही क्यों न हो। हम भारतीय सबमें समान रूप से ईश्वरीय कलाओं के अंश देखते रहे हैं। इस आलेख में काक, गीद्ध, ऊँट, हाथी आदि योनियों के सन्तों की चर्चा की गयी है। हाथी के रूप में श्रीरामदास की कथा तो 18वीं शती की है, जिनके गुरु जगज्जीवनदास दादू-पन्थ के मान्य सन्त रहे हैं। उन्होंने एक हाथी को गले में तुलसीमाला पहनाकर तथा माथे पर तिलक कर अपना शिष्य बना लिया था। ऐसे मानवेतर सन्तों की कथाएँ यहाँ सकलित हैं।

सत्य-रक्षा ही सन्तों का धर्म है। सन्त की पहचान करना भी सरल नहीं! आधुनिक जीवन-काल में हमसभी अक्सर सन्तों को पहचानने में भूल कर बैठते हैं। क्योंकि संत-वेश में छद्म-सन्तों की भरमार है। विचित्र वेश-भूषा धारण करना ही संतवेश की प्रमाणिकता बन गयी है। सच्चे सन्त अप्रकटरूप से जगत् में विचरण किया करते हैं। संतभाव की प्राप्ति ही मानव-तन अथवा जन्म की सार्थकता कही गयी है। ईश्वर भी ऐसे दुर्लभ सन्तों का त्याग नहीं कर पाते। स्वयं भगवान् ने उद्धवजी के प्रति कहा है-

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्याहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥[1]

'जिसे किसी की उपेक्षा नहीं, जो सांसारिक चिन्तन से सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तन में तल्लीन रहता है, राग-आदि को त्यागकर सबों के प्रति समान दृष्टि रखता है; उन महात्मा के पीछे-पीछे मैं निरन्तर यही सोचकर घूमा करता हूँ कि उनके चरणों की घूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।' सन्त किसी भी प्रकार के चमत्कार से सर्वथा दूर ही रहा करते हैं। सन्त हमारे समाज के गौरव के रूप में जाने जाते हैं।

सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः।
शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि॥[2]

1 श्रीमद्भागवत : 11.14.16
2 वाल्मीकि-रामायण : 3.68.24

श्रीराम कहते हैं- भैया लक्ष्मण! धर्मचारी, साधु, शूरवीर, शरणागतरक्षक सभी जगह, सभीप्रकार के योनियों में यहाँतक की तिर्यग्-योनियों में भी दिखायी पड़ते हैं। प्रस्तुत लेख में पशु, पक्षी, वनस्पति आदि योनियों में जन्म लेकर जिन-जिन सन्तों ने अध्यात्म का मार्ग प्रशस्त किया, उनका संक्षिप्त वर्णन किया गया है-

काकभुशुण्डीजी

इनकी गणना काकयोनि के सन्त में होती है। ये कलिकाल में शुद्र योनि में बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहे। ये स्वयं कहते हैं- जब अकाल पड़ा, तब दुःखित होकर उज्जैन को चले गये। वहाँ एक सन्त ब्राह्मण जो भगवान् शिव के परमभक्त थे,इन्हीं की सेवा करने लगे। ब्राह्मण बड़े ही दयालु एवं एकनिष्ठ थे, इन्होंने अपने शिष्य को भगवान् शिव के मन्त्र के साथ-साथ अनेकों उपदेश भी दिया करते थे और ये उन्हीं के द्वारा दिये शिवमन्त्र का जप किया करते थे। इनके मन में अभिमान, मलिन बुद्धि आने लगी, जिसके कारण हरिभक्तों और द्विजों को देखते ही ये इर्ष्या करने लगते। एकबार इनके गुरुजी ने इन्हें बुलाकर परमार्थ की अनेकों बातें कहीं और कहा- भगवान् शिव की सेवा का फल यही है कि श्रीराम के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति हो।

एकबार गुरु लीन्ह बोलाई।
मोहि नीति बहु भाँति सिखाई॥
सिव सेवा कर फल सुत सोई।
अबिरल भगति राम पद होई॥[3]

एक दिन ये शिवनाम का जप मन्दिर में बैठकर कर रहे थे कि उसी समय गुरुजी वहाँ आये, लेकिन इन्होंने अभिमान के मारे उठकर उनको प्रणाम नहीं किया। गुरुजी दयालु थे, उनके हृदय में लेशमात्र का भी क्रोध नहीं आया। लेकिन गुरु-अपमान को शिवजी नहीं सह सके। और शिवजी ने शाप दे दिया की गुरु के सामने तु अजगर की भाँति बैठा रहा, तेरी बुद्धि पाप से ढँक गयी है, इसलिए तु सर्प की नीची योनि को पाकर किसी वृक्ष की कोटर में बैठा रह। इसपर गुरु को अपने शिष्य पर दया आ गयी और भगवान् शिव से रुद्राष्टकम् द्वारा विनती करने लगे-

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं

....

तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

शिवजी प्रसन्न हुए और आकाशवाणी सुनाई दी- इसने भयानक पाप किया है, किन्तु गुरु की साधुता देख इसे जन्म-मरण का कष्ट नहीं सतायेगा और मेरी कृपा से रामभक्ति पायेगा। शापवश अनेकों जन्म और योनियों में भटकते हुए इन्हें ब्राह्मणयोनि मिली। इन्हें बचपन से ही 'श्रीराम चरण लय लागी' लग गयी थी, इसलिए इन्हें अन्य बातों में मन नहीं लगता। एकबार इन्हें सुमेरुपर्वत पर लोमशऋषि के दर्शन हुए और भगवान् की सगुण-उपासना के बारे में पूछने लगे। तब लोमशजी ने इन्हें अद्वैत, निर्गुणब्रह्म का उपदेश करने लगे लेकिन उन्हें तो सगुणरूप ही समझना था। इसी सगुण-निर्गुण के उत्तर-प्रत्युत्तर में लोमश ऋषि को क्रोध आ गया और इन्हें शाप मिला- जा तु चाण्डाल पक्षी (कौआ) हो जा। और वह कौआ मुनि के चरणों में शीश नवाकर श्रीराम का स्मरण करते हुए उड़ चला। तब मुनि पश्चाताप करते हुए मुझे आदर सहित बुलाया और मेरे हितार्थ मुझे राममन्त्र दिया।इन्होंने मुझे बालरूप श्रीराम के ध्यान करने की विधि बतलाई और कुछ दिनों तक इन्हीं के पास रहकर रामचरितमानस का श्रवण किया। मुनि ने हर्षित होकर कहा और जिसका आकाशवाणी ने भी समर्थन किया -

राम सदा प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।

3 रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड, 105.1

कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥
जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥[4]

अयोध्यापुरी में जब-जब श्रीराम अवतार लेते हैं, तब-तब काकभुशुण्डीजी प्रभु की शिशुलीला को देखने का सुख प्राप्त करते हैं। ये भगवान् के साथ खेलते हैं, उनकी जुठन (प्रसाद) पाकर स्वयं को धन्यभागी मानते हैं। इन्हें काकशरीर अत्यन्त प्रिय है क्योंकि इसी शरीर से इन्होंने सत्ताईस कल्प **'बीते कलप सात अरु बीसा'** (14 मन्वन्तर =1 कल्प) बिताये और श्रीराम का सानिध्य पाया। इसी कारण दूसरे शरीर को पाकर भी क्या लाभ !

ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायऊँ गए सकल संदेह॥[5]

गरुड़जी

सनातन संस्कृति में गरुड़जी शौर्यता, गतिशीलता, चातुर्यता, पराक्रम, वैष्णवभक्ति आदि जैसे सद्गुणों के प्रतिकरूप में वन्दनीय है। भगवान् ने इन्हें अपना वाहन तो बनाया ही साथ ही इन्हें अपनी विभूति भी कहा है-

'वैनतेयश्च पक्षिणाम्।'[6]

ये भगवान् के नित्य पार्षद एवं भगवान् की ओर सदैव निहारते रहना ही पसन्द करते हैं। पुराकथा शास्त्रों में इन्हें एक पक्षी के रूप में दर्शाया गया है, जिसमें इनका आधा शरीर पक्षी एवं आधा शरीर मनुष्य का है। ये अनेक भावरूप में अर्थात् दास, सखा, वाहन, आसन, ध्वजा, वितान, व्यजन होकर प्रभु की सेवा करते हुए सदा खड़े रहते हैं।[7]

श्रीमद्भागवत् में इन्हें तीनों वेदों के स्वरूप वाला कहा है-

'त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम्।'[8]

श्रुतियों में इन्हें सर्ववेदमय विग्रह कहा गया है, जिनके पंखों से सदैव सामगान की मधुर ध्वनि उच्चरित होती रहती है। इनके दोनों पंखों की तुलना ज्ञान एवं कर्म के रूप में व्यक्त की जाती है।

आकाश में सातवाँ एवं उच्चस्थ स्थान गरुड़जी के आवागमन का है, जिसमें सामान्यतः कोई अन्य पक्षी नहीं उड़ पाते। श्रीवाल्मीकीय रामायण[9] में इनकी उत्पत्ति का प्रकरण मिलता है, जिसमें प्रजापति कश्यप एवं दक्षपुत्री ताम्रा आदि से जो सृष्टिक्रम चला, उनमें ताम्रा की पुत्री शुकी हुई, इन्हीं शुकी की पौत्री विनता हुई; इन्हीं विनता के दो पुत्र हुए जिनका नाम गरुड़ और अरुण था। विनता के पुत्र होने के कारण इन्हें 'वैनतेय' कहा गया। जब राम-रावण युद्ध में लंकाधिपति रावण के पुत्र इन्द्रजित् द्वारा सन्धित बाण द्वारा इन्हें सर्पपाश से बाँधा गया था, तभी देवयोग से ये युद्धभूमि में पहुँचकर भ्राता सहित प्रभु के नागपाश को काट डाला था। गरुड़ को सर्पों का नैसर्गिक शत्रु कहा जाता है। इतना ही नहीं अपने स्पर्श एवं सेवा से इन्हें कान्तियुक्त भी किया। प्रभु ने मानवोचित लीला करते हुए गरुड़जी के बारे में पूछा तो पक्षिराज आनन्दाश्रु से भरकर प्रभु से कहते हैं-

अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणों बहिश्चरः।
गरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवयोः साह्यकारणात्॥[10]

अर्थात् हे काकुस्थ! मैं आपका प्रिय मित्र गरुड़ हूँ। बाहर विचरने वाला प्राण हूँ। आप दोनों की सहायता के लिये ही यहाँ आया हूँ। इन्होंने कुटिल राक्षसों से सावधान रहकर युद्ध करने को कहकर प्रभु

4 रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड, दोहा-113
5 रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड, दोहा-114(क)
6 श्रीमद्भगवद्गीता : 10.30
7 भक्तमाल : पृ०-75
8 श्रीमद्भागवत : 12.11.19
9 श्रीवाल्मीकीय रामायण : अरण्यकाण्ड, 14.9-32
10 वाल्मीकि-रामायण : युद्धकाण्ड, 50.46

से आज्ञा पाकर तथा परिक्रमा कर आकाश में वायु की गति से प्रस्थान कर जाते हैं। लेकिन इस कार्य के लिये इन्हें यह शंका भी होने लगी कि जो स्वयं जगदाधार हैं, वे किस तरह आभाहीन होकर नागपाश से बँधकर युद्धभूमि असहाय पड़े थे। इस विषय पर स्वयं ही संदेह, तर्क-वितर्क करने के बाद मोहाग्रस्त होकर गरुड़जी को काकभुशुण्डिजी का सत्संग-लाभ मिला। काकभुशुण्डिजी ने इन्हें श्रीरामकथा कही, श्रीराम की लीला, गुण, चरित आदि का श्रवण करवाया, तभी इनकी समस्त शंकाओं का समाधान हुआ। गरुड़जी आनन्दित होकर कहते हैं-

गयउ मोर संदेह सुनउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥
मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥[11]

'श्रीरघुनाथजी के समस्त चरित्र को मैंने सुना, जिससे मेरा संदेह जाता रहा। हे काकशिरोमणि! आपके अनुग्रह से श्रीरामजी के चरणों में मेरा प्रेम हो गया है। युद्ध में प्रभु का नागपाश के बन्धन को देखकर मुझे अत्यन्त मोह हो गया था, जो श्रीराम सच्चिदानन्दघन हैं, वे किस कारण व्याकुल हैं।' प्रभु के इसी लौकिक-चरित को देखकर मेरे हृदय में भारी मोह हो गया था; लेकिन अब मैं अब उस भ्रम को अपने हित में ही मानता हूँ, कृपानिधान का मुझपर बड़ा ही अनुग्रह है। मन्त्रमहोदधि के चतुर्दश तरंग में इनकी साङ्गोपाङ्ग स्तुति की गयी है। गरुड़जी जैसे सन्तों की प्रसिद्धि भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि सुदूर देशों में भी व्याप्त है। अष्टादश पुराणान्तार्गत गरुड़पुराण गरुड़जी के नाम पर ही है।

जटायुजी

रामचरित में गृध्रराज जटायु की उपस्थिति तब होती है, जब रावण मातासीता को हरकर पुष्पकविमान में बैठाकर दक्षिणदिशा स्थित लंका को ले चला था। मातासीता की चीत्कार एवं विलाप सुन और सहायता करने हेतु ये रावण से युद्ध करने लगे, लेकिन रावण ने इनके पंखों का काट डाला और ये पृथिवी पर गिर पड़े। सीतान्वेषणक्रम में श्रीराम जब इनके पास आते हैं, तब इन्हें घायल देख अपने करकमलों से इनके सिर का स्पर्श करते हैं। तब गृध्रराज ने समस्त घटना को कह सुनाया और कहा-

दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना।
चलन चहतअब कृपानिधाना॥
सो मम लोचन गोचर आगें।
राखौं देह नाथ केहि खाँगें॥[12]

'मैंने मात्र आपके दर्शन हेतु ही अपने प्राणों को रोक रखा है, हे कृपानिधान! अब ये चलना ही चाहते हैं।आप मेरे नेत्रों के विषय बनकर सामने खड़े हैं, हे नाथ! अब मैं किस कमी की पूर्ति हेतु अपने शरीर को रक्खूँ।' जटायु ने अपने पक्षी (गीध) शरीर को त्यागकर हरिरूप का ध्यान करते हुए श्रीहरि के परमधाम को चला गया। श्रीराम ने स्वयं जी इनका दाहकर्म एवं अन्य उचित कर्म भी किया। श्रीरघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्त वाले, दीनदयालु और बिना कारण के ही कृपालु हैं। गीध जैसे पक्षियों में अधम माने जाने वाले और माँसाहारी को भी प्रभु ने दुर्लभ गति दी, जिसे योगीजन भी माँगते रहते हैं। प्रभु का भी कहना था- जिसप्रकार महायशस्वी महाराज दशरथ जैसे हमारे मान्य हैं, उसी प्रकार के मान्य और पूज्य हमारे लिये गृध्रराज जटायु भी हैं। ये ज्ञानवृद्ध, आयुवृद्ध होने साथ ही राजा दशरथ के सखा भी थे। विनता के पुत्र हुए गरुड़ और अरुण हुए। इन्हीं अरुण के दो पुत्र पुत्र-

11 रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड, दोहा-68क, ख
12 रामचरितमानस : अर०-30.2

सम्पाति एवं जटायु। ये दोनों ही समस्त गृध्रों के राजा के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

हंस रूपी भक्त संत

किसी देश में एक राजा थे, वे कुष्ठरोग से ग्रस्त थे। वैद्यों ने आकर जाँच की तो कहा मानसरोवर से हंसों को लाकर उसी की बनी हुई दवा का सेवन आप करें, तो स्वस्थ हो जायेंगे। राजाज्ञा के अनुसार व्याधा मानसरोवर की और गये, लेकिन वे इन्हें देखकर भाग जाते। बुद्धिमानों ने कहा वैष्णव संतवेश धारण करने से ही ये हाथ आयेंगे। ये हंस पकड़ में आ गये, यह जानते हुए भी कि ये बधिक है लेकिन सन्त वेश के सम्मानार्थ बँध गये। भक्तवत्सल प्रभु ने जान लिया की ये बधिक के वेश का नहीं अपितु वैष्णववेश का सम्मान किया और प्राण अर्पण के लिये तैयार हो गये। उसी क्षण प्रभु वैद्य का रूप धारण कर राजा के जाकर कहा-आपने इन हंसों को बेकार ही मँगवाया है, मैं आपके कुष्ठरोग को ठीक कर सकता हूँ। वैद्यरूपधारी प्रभु ने राजा का कष्ट दूर कर हंसों को मुक्त करवा दिया। राजा वैद्य के चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगा आपने मुझे निरोग तो किया ही, जीवहत्या से भी बचाया। प्रभु बोले-मैं अब यही चाहता हूँ तुम भगवान् की भक्ति करो, सन्तों की सेवा करते हुए जीवन को धन्य बनाओ।

वैद्यरूप हरि अस कहि बयना।
पुनिकह तोहि यम की अब भय ना॥[13]

इधर प्रभुकृपा से बधिकों को भी ज्ञान प्राप्त हुआ, जिस वेश में हंसों को पकड़ने गये थे, वही वेश धारण किये रहे। क्योंकि हंसों ने भी इसी वेश का सम्मान किया था। ये बधिक-व्यापार को छोड़कर सत्संग करने लगे और इनकी मति भक्तिरस से भींग गयी और ये कल्याणमार्ग के पथिक हो गये।

पशुयोनि के संत- ऊँट जानकीदासजी

एक सुप्रसिद्ध सन्त हुए- श्रीमहंत जगन्नाथदासजी। ये अपनी जमात में एक ऊँट रखा करते थे। महंत अपने सामान, बर्तन आदि इसी ऊँट की पीठ पर लादे रामत्व में जाया करते थे। महंत की जमात के कोई साधु पीछे रह जाते या उनकी गठरी नहीं चढ़ायी जा सकी होती, तो यह ऊँट सामान चढ़ाने के लिये बैठ जाता और गठरी लदवाकर तभी आगे चलता। ऐसे ही अनेक शीलवान् गुणों के कारण ये 'जानकीदास' के नाम से जाने जाते। इनके गले में तुलसी की माला पड़ी रहती थी। आरती आदि के समय ये भी भागवत साधु-सदृश खड़े रहते, फिर बैठकर नमन करके आचमन, चरणामृत लेकर अपना स्थान ग्रहण करते।

इनके आहार में जो कुछ भी भोग लगता, सबों की मिलाकर एक छिछले चौड़े बर्तन में डालकर रख दिया जाता और बड़े ही रूचि से प्रसाद ऐसा सेवन करते कि इसका एक दाना भी न तो नीचे गिरता और न ही बेकार जाता। इसी प्रकार एक नाद में रखे जल को मन से पी जाते। सन्ध्या समय काफी मात्रा में नीम की पत्तियाँ चबा जाते। जब भी भगवत्कथा होती, व्यासपीठ के कुछ ही दूरी पर बैठ जाते और जहाँ कथा में हृदयग्राही प्रसंग मिलता, वे अपनी भाषा में प्रकट करने से भी नहीं चुकते। भरत-मिलाप के एक भ्रातृप्रेम प्रसंग में वक्ता और श्रोता सभी के आनन्दाश्रु झर रहे थे, जानकीदास का भी अश्रुपात हो रहा था, तभी ये अपनी बोली में कह उठे- 'कुलशय फ़िकाल ताला व तकद्दुस...।' इसको सुनकर उस सभा में बैठे एक मौलवी ने कुरआन की इस आयत को सुनकर अचम्भित हो गये। मौलवी ने महंत को यह बातें कहीं कि लगता है इन ऊँट को कुरआन कण्ठस्थ है। यह तो सच्चा और पक्का मुसलमान लगता है। फिर महंत ने

13 श्रीभक्तमाल : पृ०-422

ऊँट को किस प्रकार से प्राप्त किया, सारी घटना को कह सुनाया। महंतजी कहते हैं- यह जीव नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेता है, यह ऊँट भी पूर्वयोनि में मनुष्य रहा होगा। यह अरब की धरती का वासी होकर कुरान आदि का भी पठन-पाठन किया होगा, इसलिये इसके पूर्व धार्मिक संस्कार की प्रवृति बनी हुई है।

एक बार हरिद्वार-कुम्भ के लिये सन्तों की जमात जा रही थी, मार्ग में वृन्दावन में पड़ाव आया। रंग एकादशी के दिन प्रातःकाल में जानकीदास ने अपने पीने-खाने के बरतन को तोड़ डाला। सभी साधु-सन्त इस घटना को देख हैरान थे। महंत ऊँट के सामने आते तो ये अपने अगले दोनों टांगों को ऊपर उठाकर यह संकेत करते कि मेरा प्रस्थान करने का समय आ गया। महंत ने कहा तुम्हारी जो कुछ अंतिम इच्छा हो तो कहो। तभी महंत ऊँट पर बैठ गये और ऊँट ने अपना दाहिना कान ऊपर उठा दिया। महंत सारी बातों को समझ गये थे। महंत ने जल मँगवाया, शुद्धि संस्कार की और कान में तारक-मन्त्र का उपदेश दिया। उसी समय जानकीदास का सिर फट गया और इनके प्राण आकाश में विलीन हो गये। वहाँ उपस्थित साधु समुदाय हर्षित होकर जानकीदास की जयजयकार करने लगे और कहने लगे जानकीदासजी पशु-योनि प्राप्त होकर भी योगियों जैसी परमगति पायी।[14]

पशुयोनि के संत- हाथी श्रीरामदासजी

इसी प्रकार, हाथी के रूप में सन्त श्रीरामदास की कथा भी मिलती है। 18वीं शती के अंतिम वर्षों में एक दादू-पन्थ सन्त चतुर्भुजदास हुए थे। उन्होंने अपने से प्राचीन सन्त जगज्जीवनदास के चरित पर आधारित संस्कृत काव्य जगज्जीवनचरितम् की रचना की। इसकी पाण्डुलिपि का प्रथम बार सम्पादन पं. भवनाथ झा के द्वारा धर्मायण की अंक संख्या 108, जगन्नाथ विशेषांक में किया गया है। इसमें कथा है कि एक बार दिल्ली के राजा ने जगज्जीवनदास की चमत्कारपूर्ण कथाओं को सुनकर उन्हें दिल्ली बुलाया। वहाँ पहुँचने पर उसने शराब पिलाकर एक विशाल हाथी को इनकी ओर दौड़ा दिया ताकि वह हाथी इन्हें कुचलकर मार डाले। इसे देखकर सभ लोग तो भाग खड़े हुए, पर जगज्जीवन दास अपने मार्ग पर चलते रहे। वह हाथी इनके सामने आकर नतमस्तक हो भूमि पर बैठ गया। जगज्जीवनदास ने भी उसके गले में तुलसी की माला डाल दी और माथे पर चंदन कर दिया और उसका नाम श्रीरामदास रख दिया।

यह देखकर म्लेच्छ शासक भी आश्चर्यचकित होकर इनके पैरों पर गिर पड़ा। जगज्जीवनदासजी ने राजा से कहा कि आज से आप किसी भी सन्त की परीक्षा न लेने का शपथ लें। इतना कहकर वे जगन्नाथपुरी की यात्रा पर चले गये। वह म्लेच्छ राजा भी हाथी रामदास की सेवा करने लगा। उस नगर कोई सन्त आते थे तो वह हाथी बाजार से इनके खाने-पीने की सामग्री तथा ईंधन के लिए लकड़ी जमा करने का कार्य करने लगा। कुछ दिनों के बाद बहुत सारे सन्त एक साथ उस नगर में आये वे लोग जब जगन्नाथ पुरी की यात्रा पर निकलने लगे तो वह हाथी भी उनके पीछे -पीछे चल पड़ा। जगन्नाथ पुरी पहुँचकर उसने अपने गुरु जगज्जीवनदास का दर्शन किया तो गुरु ने कहा कि तुम विष्णु के परम धाम को प्राप्त करोगे। गुरु के इतना कहते ही हाथी सन्त श्रीरामदास की मृत्यु हो गयी।[15]

वनस्पति योनि के संत

अयोध्यापुरी स्थित अशोकवन में आकर्षित करने

14 बालकराम विनायक, पशुयोनिप्राप्त संत, कल्याण : सन्त अंक, (1937ई.) पुनर्मुद्रण 2021ई., पृष्ठ. 749
15. झा, भवनाथ, चतुर्भुजदास कृत जगज्जीवनचरितम्, धर्मायण, 108, अषाढ़, 2078 वि.सं. (जुलाई, 2021ई.) पटना, पृ. 3-11

वाला एक सुन्दर वृक्ष था। इसमें छोटे-छोटे पत्ते लगते थे, लेकिन इसकी छाया घनी होती थी। इस वृक्ष में लगने वाले फल अत्यन्त पुष्टिकारक होते थे। इसके फूल इन्दीवर के समान बड़े ही आकर्षक होते थे, जिन्हें देखने मात्र से आँखों को रोशनी मिलती थी तथा यक्ष्मा आदि रोगों का भी शमन होता था। इसकी लताएँ बच्चों की दवा थी, इसके सेवन से दाँत सहज ही निकलने लगते थे। इस वृक्ष की प्रसिद्धि इस कारण से भी थी कि इसकी छाया में बैठने मात्र से अपार शान्ति होती थी। जो मामला कहीं नहीं निपटता, वह इसकी छाँव में बैठकर न्यायोचित ढंग ने निपटाया जाता था। इसकी जड़ के गुण-विशेष को सन्त लोग ही जानते थे लेकिन किसी को बताते नहीं। इसकी छाल को कहीं से भी हटाया जाय तो इसके भीतर राम-नाम लिखा पढ़ने को मिलता था। ठीक वैसे ही जैसे हनुमानजी के समस्त शरीर, रोम-रोम में राम ही राम थे। यह अद्भुत वृक्ष अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण 'रामनामी' वृक्ष या 'रामवृक्ष' कहलाने लगा था। दूर-दूर से लोग इस विशिष्ट वृक्ष को देखने, इसकी परीक्षा करने आते और चमत्कृत हो जाते।

वृक्ष विशेष 'श्रीरामवृक्षजी' सच्चे अर्थ में सन्त थे। इन्होंने दिव्यधाम में अपना वास पाया, ऐसा ही लोग कहते थे। इन्होंने नररूप धारण किये बिना ही स्वतः पल्लवों को हिलाकर सात कथाएँ कहीं-जिन्हें सात सतियों के चरित के रूप में मान्यता है। ये कथाएँ अपूर्व, प्राचीन एवं तत्त्वपूर्ण हैं। इन्हीं सप्तसती की कथा कल्याण के अंको में देखी जा सकती है। धन्य है भारत की भूमि जहाँ सन्त किस रूप में विराजेंगे, कोई कह नहीं सकता। इन्हें मात्र पहचनाने की आवश्यकता है।[16]

रघुपति चरन उपासक जेते।
खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदउँ पद सरोज सब केरे।
जे बिनु काम राम के चेरे॥[17]

पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य, असुर समेत जितने भी श्रीराम के चरण में उपासक हैं, मैं उन सभी के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जो श्रीराम के निष्काम सेवक हैं।

इसप्रकार मानवेत्तर सन्तों में गजेन्द्र, ग्राह, शेषजी, हनुमानजी, अंगदजी, जाम्बवानजी, असुरराज प्रह्लाद आदि अनेकों नाम हैं, जिनका नाम अग्रणी सन्तों की श्रेणी में परिगणित किया जा सकता है।

***

16 बालकराम विनायक, वनस्पति-योनिके सन्त कल्याण : सन्त अंक, उपर्युक्त, पृष्ठ. 423
17 रामचरितमानस : बालकाण्ड, 17.2

18वीं सती के दादूपन्थी सन्त जगज्जीवन दास ने अपने समक्ष नतमस्तक हाथी को भी अपना शिष्य बनाकर उसे सन्त बना दिया। यह कथा चतुर्भुज दास कृत संस्कृत काव्य जगज्जीवनचरितम् में विस्तार से वर्णित है। यह जगज्जीवनचरित पं. भवनाथ झा के सम्पादन में धर्मायण की अंक संख्या 108, जगन्नाथ विशेषांक में पूर्वप्रकाशित है।

नाथ योगियों की लोकपरम्पराऔर उनका अवदान

डॉ. विभा ठाकुर,
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्वतन्त्रलेखन।

सनातन धर्म हमेशा लोकोन्मुख रहा है। जब अतीत में ही वेद के मन्त्र लोक के लिए बोधगम्य नहीं रहे तो लोकसंग्रह के लिए हमारे पूर्वज सन्तों के द्वारा संस्कृत भाषा में आगम-संहिताएँ रची गयीं और उपासना की आगम-पद्धति समाज में प्रचलित हुईं। वैदिक यज्ञ के स्थान पर अतिथि-सत्कार की शैली में आगम की उपचार-पद्धति को मान्यता मिली। आगे चलकर जब संस्कृत भी आम जनता के लिए दुर्बोध हुई तो जनभाषा के माध्यम से सिद्ध और नाथ सन्तों ने लोक को सनातन धर्म से जोड़ने कार्य किया। इस प्रकार, सनातन लोकभाषा के माध्यम से सन्तमत के नये रूप में आ गया। इस नये रूप को सँवारने में नाथयोगियों की अहम भूमिका रही है। आज जब हम वेद को ही सर्वस्व मानने की ग्रंथि बाँधकर इस जनभाषा की धारा को खारिज करने लगते हैं और पश्चगामी बन जाते हैं तो सनातन लोक से दूर होता चला जाता है। इस प्रकार, हमारी सनातन परम्परा हमेशा लोक-कल्याण हेतु, लोकोन्मुखी होकर नये-नये रूप में समाजोपयोगी बनती रही है। हमें इस परिवर्तन के स्वर को गौर से देखना चाहिए।

गुप्तवंशी राजाओं के संरक्षण में वैदिक धर्म का उदय और प्रसार हो रहा था लेकिन उसी युग में सहजिया सिद्ध एवं नाथ संप्रदाय के साधु वैदिक धर्म का पुरजोर विरोध कर रहे थे। छठी सदी से दसवी सदी तक भारतीय समुदाय धार्मिक पद्धति के आधार पर दो भागों में बट चुका था। एक स्मृति मार्ग का अनुयायी था जो पूजा पाठ जप तप, स्वर्ग नरक में विश्वास रखता था वही एक वर्ग ऐसा था जो मंदिर पुरोहित, कर्मकांड आदि में विश्वास नही रखता था और न जाति व्यवस्था को मानता था। बौद्धों के दीर्घकालीन प्रचार ने समाज में एक ऐसा समुदाय तैयार कर दिया जो निराकार ईश्वर को मानता था।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "गोरखनाथ के पूर्व ऐसे बहुत से शैव, बौद्ध और शाक्त सम्प्रदाय थे, जो वेदबाह्य होने के कारण न हिंदू थे न मुसलमान। जब मुसलमानी धर्म प्रथम बार इस देश में परिचित हुआ तो नाना कारणों से दो प्रतिद्वंद्वी धर्मसाधनामूलक दलों में यह देश विभक्त हो गया।"

बौद्ध धर्म को मानने वालों की स्वाभाविक परिणति अद्वैतवादी हिंदू संप्रदायों में होती है या इस्लाम में। सिद्ध नाथपन्थ और निर्गुनिया सन्त इन्हीं बौद्ध प्रचारकों के उत्तराधिकारी थे। गोरखनाथ के संप्रदाय में अनेक बौद्ध, शैव, शाक्त संप्रदाय अंतर्भुक्त हुए, परंतु इस सम्प्रदाय के हिंदू गृहस्थ मुसलमान हो गए थे।

बौद्धसिद्ध निरीश्वरवादी थे, लेकिन नाथसिद्ध ईश्वरवादी पन्थ था शायद इसी कारण नाथ सिद्धों से जनता का जुड़ाव हुआ क्योंकि मुगल आक्रमण के बाद भारतीय समाज के हाशिये पर स्थित समुदायों को धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर किया गया। विशेषकर जिन समुदायों को हिंदू धर्म ने अपने से दूर रखा उस समुदाय के लोगों ने इस्लाम धर्म कबूल कर लिया लेकिन कुछ लोग ऐसे थे जो न हिंदू थे और न मुस्लिम धर्म को अपना रहे थे। ये श्रमजीवी लोग थे इसमें से कई लोग नाथपन्थ हो गए। जाति विमुक्त होने के कारण इन लोगों के प्रति मुसलमानों का व्यवहार कठोर नही था। जाति प्रथा न मानने वाले इन साधुओं ने हिंदू मुस्लिम धर्म की कट्टरताओं का विरोध कर मानवतावाद का संदेश दिया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "वयनजीवी जातियों में से अधिकांश किसी समय ब्राह्मण श्रेष्टता को स्वीकार नहीं करती थीं।... ये नाथपन्थ थे कपड़ा बुनकर या सूत कातकर या गोरखनाथ और भरथरी के नाम पर भीख मांगकर जीविका चलाया करतें थे। (पृ. 247 संस्कृति के चार अध्याय -दिनकर)

निम्न जातियों पर नाथ पन्थयों के प्रभाव के बारे में माचवे जी का भी यही मानना हैं "तांती, जुलाहे, गड़रिये दर्जी आदि वयनजीवी जातियां आदिनाथ को मानने वाली गृहस्थ योगी हैं। बहुत से गृहस्थ योगी मुगलों के आने के बाद मुसलमान हो गए हैं। कबीर ऐसे ही गृहस्थ योगी जाति के थे। जोगी नामक आश्रम भ्रष्ट घरबारियों की एक जाति सारे उत्तरी और पूर्वी भारत में फैली हुई थी। ये नाथपन्थ कपड़ा बुनकर या सूत कातकर या गोरखनाथ और भरथरी के नाम पर भीख मांगकर जीविका चलाया करते थे। इसमें निराकार भाव की उपासना प्रचलित थी ,जाति भेद और ब्राह्मण श्रेष्ठता के प्रति इनकी कोई सहानुभूति नहीं थी और न अवतारवाद में ही इनकी कोई आस्था थी। बुंदेलखंड के नाथपन्थ गड़रिया के पुरोहित योगी होते थे उनके विवाह मंत्रों में गोरख मछंदर के नाम आते थे। ...

यानी उस युग में एक ऐसा पन्थ था जिसके अनुयायियों में हिंदूओं के साथ मुसलमान भी शामिल हो रहे थे। कई यवन नाथों में विख्यात हुए। अप्पानाथ अरब और गूगा के गुरु बाबा रतन हाजी दोनों गोरख के चेले हैं। उज्जैन में जो भर्तृहरि की गुफा है उसके पास के मछंदर का टीला हिंदू मुस्लिम दोनों द्वारा एक सा पूजित था ऐसी परम्परामिलती है।" (पृ 116. हिंदी और मराठी का निर्गुण संतकाव्य)

नाथपन्थ का प्रवर्तक गोरखनाथ को माना जाता है और नाथों की संख्या नौ मानी जाती है। इस पन्थ के प्रमुख संस्थापक गोरखनाथ के जन्मस्थान को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कोई इन्हें दक्षिण का बताते हैं तो कुछ इन्हें पंजाब का, कोई नेपाल का। सामान्यतः इन्हें कांगड़ा का निवासी माना जाता है। वहां ज्वालादेवी में इनसे संबंधित अवशेष आज भी मिलते हैं। ब्रिग्स ने एक परम्पराका उल्लेख किया है जिसे ग्रियर्सन ने भी उद्धृत किया है जिसमें कहा गया है कि गोरखनाथ सतयुग में पंजाब के पेशावर में त्रेता में गोरखपुर में, द्वापर में द्वारिका के आगे हुरमुज में और कलिकाल में काठियावाड़ की गोरखमढ़ी में प्रादुर्भूत हुए थे। बंगाल में यह विश्वास किया जाता है कि गोरक्षनाथ इसी प्रदेश में उत्पन्न हुए थे। नेपाली परंपराओं से अनुमान होता है कि वे पंजाब से चलकर नेपाल गए थे। गोरखपुर के महंतो का विश्वास है कि गोरखनाथ टिला (झेलम पंजाब) से गोरखपुर आए थे। नासिक के योगियों का विश्वास है कि वे पहले नेपाल से पंजाब आए थे और बाद में नासिक की ओर गए थे।इन दो अनुमानों के आधार पर ब्रिग्स ने अनुमान किया है कि संभवतः गोरखनाथ पंजाब के निवासी रहे होंगे।

एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि योगी धुमंतु स्वाभाव होते हैं। योगी गोरखनाथ ने भी शंकराचार्य के समान पंजाब, गुजरात, काठियावाड़, उत्तरप्रदेश, नेपाल, असम, उडीसा की यात्राएं की। इनके पन्थ का प्रसार हिंदी प्रदेश के बाहर भी हुआ। विशेषकर बंगाल, बिहार और नेपाल इनका प्रचार क्षेत्र रहा। पीताम्बर बड़थ्वाल के अनुसार काबुल से कामरूप एवं काठमांडू से सुदूर दक्षिण तक के कदाचित ही कोई प्रदेश इनके प्रभाव से वंचित हो। "गोरखपन्थ का अखिल भारतीय प्रसार पन्थ की लोक स्वीकृति का प्रमाण है।भारत ही नही श्री लंका और नेपाल में भी इनके मठ देखे जा सकते हैं।

'मराठी साहित्य का इतिहास' में कृष्णलाल हंस लिखतें हैं "इनके समय नेपाल में बौद्ध धर्म की महायान शाखा का जोरों से प्रचार था पर इनके उपदेश से वहां के निवासियों ने अद्वैतवाद स्वीकार कर लिया और इनके नाम पर वे गोरखे कहलाने लगे।" (पृ.23)

गोरखपन्थ की अनेक शाखाओं व उपशाखाओं के साथ समाज के हर वर्ण के लोग जुड़ रहें थे। इनका विस्तार देश के बाहर भी होने लगा था। पागलबाबा के द्वारा सुनाई गई जनश्रुति के अनुसार शिव ने बारह पन्थ चलाए और गोरखनाथ ने भी बारह पन्थ चलाए लेकिन दोनों दलों में झगड़े होने लगे तो गोरखनाथ ने शिव के छः पन्थ और अपने छः पन्थ तोड़कर सिर्फ बारहपन्थ शाखा की स्थापना की जिसके अनुयायी पूरे भारत में नाथपन्थ के प्रचारक बने और जनता का मार्गदर्शन करने लगे।

नाथपन्थ का साहित्य पर प्रभाव -

भारतीय साहित्य में विविध पन्थ के धार्मिक गुरुओं का आध्यात्मिक चिंतन व उपदेशों के अवदान को रेखांकित किया गया है। भारत की धार्मिक परम्परामें नाथपन्थ का प्रभाव सभी भाषाओं के साहित्य में चिह्नित किया जा सकता है। उड़ीया का आदिकालीन साहित्य नाथ धर्म और दर्शन की आदि विकास भूमि है। कई दशकों से नाथ योगी उड़ीसा के गांव के नीति उपदेशक रहें हैं। नाथ धर्म का प्रतिष्ठित ग्रन्थ शिशुवेद शून्य दर्शन का आदि ग्रन्थ है। इसमें तन्त्रके गूढ़ तत्त्व का विश्लेषण किया गया है। संप्तांयोग ओर अष्टांगयोग गूढ़ तन्त्रग्रन्थ है। सप्तांग योगधारण में गोरखनाथ के भजन संग्रहित हैं। इसी प्रकार अमरकोश गीत के भजनो में गोरखनाथ तथा कई सिद्धाचार्यों के नाम मिलतें हैं। मत्स्येन्द्रगीता से उड़ीसा में नाथ मत के प्रसार और उड़ीसा वासियों के इष्टदेव जगन्नाथ साहित्य अपभ्रंश मिश्रित साहित्य है।

इसी प्रकार असम के मीननाथ, सरहपाद, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, नागार्जुन, आदि अनेक सिद्धाचार्यों के नाम कामरूप में प्रसिद्ध रहे हैं। पंजाबी साहित्य का आरंभिक साहित्य नाथ योगियों व सूफियों द्वारा रचित है। आठवीं नवमी शताब्दी के नाथ एवं योगी गोरखनाथ, चर्पट, गोपीचंद इसी काल के पंजाबी कवि हैं। इसी प्रकार गोरखनाथ के शिष्य निवृतिनाथ ने महाराष्ट्र को अपनी कर्मस्थली बनाया और मराठी भाषा में ही गोरखपन्थ के मतों का प्रचार किया। निवृतिनाथ के शिष्य ज्ञानेश्वर ने भी गोरखनाथ और शंकराचार्य के अद्वैतवादी सिद्धांत को ही अपनी भक्ति का आधार बनाया।आगे यही भक्ति सन्त नामदेव के समय पंढरपुर का भागवत धर्म कुछ परिवर्तन के साथ वारकरी पन्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार भारतीय भक्ति आंदोलन के निर्गुण सन्त नाथपन्थ परम्पराके उत्तराधिकारी बनकर उनके बहुत सारी बातों को ग्रहण करते हैं और बहुत सी बातों को छोड़ भी देतें हैं। जैसे गोरखनाथ एकांकी साधना पर बल देते है लेकिन निर्गुण सन्त सामूहिक भक्ति में विश्वास करते हैं। जिस प्रकार नाथपन्थ सिद्धपन्थ का संशोधित रूप है उसी प्रकार निर्गुण सन्त नाथपन्थयो का नया रूप हैं।

विशेषकर भक्तिकाल के निर्गुण भक्त कबीर पर गोरखनाथ का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता हैं। मध्यकालीन जड़ता से ग्रस्त निम्न जातियों में समानता का भाव पैदा करना हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक भेद को दूर कर उन्हें आपस में मिलाने की सामाजिक भूमिका गोरख पन्थयों ने पूरी की थी। गोरख के वचनों में मुसलमानों के आगमन के बाद चारों तरफ लूटपाट और अराजक वातावरण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है उनकी उलटबाँसियों में आक्रमणकारियों के लूटपाट का चित्रण किया है-

ब्रह्माण्ड फूटिबा नगर सब लूटिबा,
कोई न जांणाबा भेद

(गोरखवाणी सबदी 112, पृष्ट 39)

नाथपन्थ के प्रति लोक आस्था -ऐसे अशांतिमय वातावरण में सामान्य जनता को धार्मिक आडम्बरों से मुक्त आत्मिक चिंतन का संदेश देने वाले गोरखनाथ ने गोरखपन्थ को व्यवस्थित रूप दिया। कुछ धार्मिक नवाचारों और सुधारों से आत्मानुभूति और शैव परम्पराके सामंजस्य से चक्रों की संख्या निश्चित की और अपने उपदेशों को लोकभाषा के माध्यम से जनता को भक्ति मार्ग पर प्रशस्त किया।नाथपन्थ के विचारों की लोकग्राह्यता इसलिए भी हुई कि उन्होंने उस युग जटिल सिद्ध वामाचार के स्थान पर सदाचार पर बल दिया। शरीर को कष्ट देने के स्थान पर मन साधने की बात करते हुए गोरखनाथ कहते हैं-

हसिबा खेलिबा रहिबा रंग,
काम क्रोध न करिबा संग।

अर्थात हँसना खेलना और मस्त रहना चाहिए किन्तु काम क्रोध का साथ नहीं करना चाहिए। इस प्रकार गोरखनाथ ने वैदिक कर्मकांड से निकालकर जनता को सहज भक्ति से जुड़ने का मार्ग दिखाया। उनका वेदान्त धर्म नहीं है ,वह ऐसा दर्शन है जो हर तरह के धार्मिक भेदभाव का खंडन करने वाला है। उनका योग अंततः भक्ति की राह पर ले जाता है। नाथपन्थ के आराध्य शिव है और यह शरीर शिव का पुर है। कुंडली शक्ति है। उसके जागने पर उसका मेल शिव से होता है। योगी सिद्धि प्राप्त कर ले तो शिव और पार्वती उनकी सेवा करेंगे। *(पृ.176 भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश- रामविलास शर्मा)* लोक में यह विश्वास जगाने में कामयाब हुए। इस पन्थ ने जन जन में यह प्रचारित किया कि योगी के लिए शिव केवल प्रतीक रूप में है। सिद्धि प्राप्त करने के बाद योगी शिव से भी ऊंचे स्थान पर पहुँच जाता है। इस प्रकार नौ नाथों में प्रथम आदिनाथ स्वयं शिव माने जातें हैं। शिवोपासक होने और तन्त्र-मन्त्र व योग को महत्त्व देने के कारण इन्हें योगी भी कहा जाता है।

नाथों में नागार्जुन, (रसायनी) जड़भारत, हरिश्रय , सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ (गोरखनाथ), चर्पटनाथ, जलंधरनाथ (बालकनाथ), मलयार्जुन ये सभी निम्न जाति से संबन्ध रखते थे जबकि गोरखनाथ स्वयं ब्राह्मण थे। जो नाथपन्थ में जाकर अतिवर्णाश्रमी हो गए थे। इनके गुरु मछेंद्रनाथ जो जाति के मछुआरे थे इनको मीननाथ मीनपाल या मछेंद्रपाल के नाम से भी जाना जाता है। गोरखनाथ और मत्स्येंद्रनाथ के चमत्कारों के सन्दर्भ में कई जनश्रुतियां इस बात का प्रमाण है कि गोरखपन्थ उस युग का क्रांतिकारी धार्मिक पन्थ है जो वैदिक परम्पराऔर वामाचारों से त्रस्त जनता को सहज भक्ति मार्ग की राह पर ले जाने में कामयाब हुआ। नाथपन्थ के उत्पति की लोककथा के अनुसार नारद ने शिव के गले में मुंडमाल का रहस्य बताते हुए कहा कि यह सारे मुंड पार्वती के पूर्व जन्मों के कपाल है। अमरकथा न जानने के कारण ही वह हर जन्म में मृत्यु को प्राप्त हो जाती हैं और अमरकथा के ज्ञाता होने के कारण शिव अमर हैं। ऐसा जानकर पार्वती ने शिव को अमरकथा सुनाने का आग्रह किया। इस कथा को सुनाने के लिए शिव पार्वती को समुद्र के

किनारे निर्जन स्थान पर ले गए। इधर कविनारायण मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में एक भृगुवंशीय ब्राह्मण के घर अवतरित हुए। पर अशुभ लग्न में जन्म लेने के कारण उनके ब्राह्मण पिता ने बालक को समुद्र में फेक दिया जिसे एक मछली ने निगल लिया। वह बालक उसी मछली के पेट में बारह वर्ष तक बढ़ता रहा। शिव द्वारा पार्वती को सुनाई जाने वाली अमरकथा को उस बालक ने सुना जिसे बाद में शिव ने महासिद्ध योगी होने का आशीर्वाद दिया। वैरागी होने के बाद भी मत्स्येंद्रनाथ दो बार गृहस्थी के चक्र में फँस गए। प्रथम बार प्रयाग के राजा के मरने के बाद शोकाकुल प्रजा को देखकर गोरक्षनाथ ने ही उनसे राजा के मृत शरीर में प्रवेश करके लोगों को सुखी करने का अनुरोध किया। तब मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने शरीर की बारह वर्ष रक्षा करने की अवधि देकर राजा के शरीर में प्रवेश किया और बारह वर्ष तक गार्हस्थ्य जीवन का भरपूर आनन्द लिया लेकिन एक दिन यह रहस्य रानियों को पता चल गया और उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ के शरीर को नष्ट कर देने की कोशिश की। पर वीरभद्र सही समय पर आकार उस शरीर को लेकर चले गए किंतु पुरानी शत्रुता के कारण वह मत्स्येन्द्रनाथ के शरीर को लौटाना नही चाहता था लेकिन मत्स्येन्द्रनाथ की अद्भुत शक्ति के कारण वीरभद्र को झुकना पड़ा और उसे उनका शरीर लौटना पड़ा।इसी समय मत्स्येन्द्रनाथ के माणिकनाथ नामक पुत्र उत्पन्न हुऐ जो एक बड़े योगी कहलाए। एक अन्य कथा के अनुसार त्रयोदश (सिंहलदीप) की रानी ने अपने दुर्बल हीन पति से असंतुष्ट होकर हनुमान जी से स्वस्थ बलशाली पुरुष पाने के लिए प्रार्थना करने लगी। हनुमान जी स्वयं तो ब्रह्मचारी थे इसलिए उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ को उनका पति बनने का आदेश दिया। तब उस रानी ने अपने राज्य में योगियों के प्रवेश पर रोक लगा दी। अपने गुरु मत्स्येंद्रनाथ को काम वासना से मुक्त कराने के उद्देश्य से गोरखनाथ ने बालक का रूप धरकर नगर में प्रवेश किया। कलिंगा मत्स्येंद्रनाथ के अन्त:पुर की नर्तकी थी। बालक गोरखनाथ कलिंगा के पास गए और अपना स्त्री रूप बनाकर उन्हें दिखाया तथा तबला वादन कर उनको खुशकर किया। तब कलिंगा उनको अपने साथ अन्त:पुर ले गई। वहाँ जाकर गोरखनाथ ने अपने चमत्कार से तबले वाले के पेट में दर्द कर दिया तब कलिंगा ने गोरखनाथ से तबला बजाने को कहा। गोरखनाथ ने जब तबला बजाया तो तबले से एक ही ध्वनि निकल रही थी कि -

जाग मछंदर, गोरख आया।

इस ध्वनि को सुनकर मत्स्येंद्रनाथ में चेतना लौटने लगी लेकिन रानी उन्हें जाने नहीं देना चाहती थी। स्वयं मत्स्येंद्रनाथ भी भोग विलास को छोड़कर जाने को तैयार नहीं थे लेकिन गोरखनाथ अपने गुरु को क्षणभंगुर जगत की नश्वरता को समझने में सफल हुए और मत्स्येंद्रनाथ सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर पुन: अपने योगी जीवन में लौट आए।इस विवाह में उन्हें दो पुत्र हुए जिनके नाम परशुराम और मीनराम थे।ये दोनों आगे चलकर सिद्ध योगी हुए। इस प्रकार गोरखनाथ और उनके गुरु के चमत्कारों को लेकर अनेक जनश्रुतियां प्रचलित है।

नाथपन्थयों का आचार व्यवहार -

गोरखपन्थियों की अलग वेशभूषा के कारण इन्हें पहचानना कठिन नहीं होता। गोरखपन्थियों के कुछ आचार व्यवहार है जिसमें यह कान चिरवाकर कर्ण कुंडल धारण करते है। इस कारण इन्हें कनफटा कहते है। जो कान नही चिरवाते उन्हें औघड़ कहा जाता है। कुंडल को कान के मध्य भाग में धारण किया जाता है। कनिपा कहे जाने वाले योगी यही कुंडल कान की लोरो में भी पहनते हैं। कुंडल पहनने की परम्परा मत्स्येन्द्रनाथ या गोरखनाथ ने शुरू की थी। कान में मुद्रा धारण करने के कारण इन्हें दरसनी साधु कहते हैं।

यह मुद्रा कई धातुओं या हाथी के दाँत की भी होती है। कान चिरवाने की परम्परा एक कसौटी है शिष्य की दृढ़ता और अड़िग स्वभाव को परखने की। इस कसौटी पर खरे उतरने वाले लोग ही पन्थ में शामिल हो पाते हैं। पीड़ा के भय से डरने वाले लोग इस संप्रदाय में प्रवेश नहीं कर पाते।

नाथपन्थ में दीक्षित साधु मेखला श्रृंगी सेली, गुदरी खप्पर, मुद्रा बाघम्बर, झोला, चिमटा या त्रिशूल के साथ एक विशेष प्रकार का वाद्य यन्त्र भी रखते हैं। किंगरी एक प्रकार की चिकारी है जिसे पौरिये या भर्तृहरि के गीत गाने वाले योगी लिए रहते हैं। इनके हाथों में जो सारंगी होती है उसे गोपीयन्त्र भी कहा जाता है। मान्यता है कि इस वाद्ययन्त्र का प्रयोग सर्वप्रथम गोपीचंद ने किया था। सींगी हरिण के सींग का बना हुआ एक बाजा है जो मुँह से बजाया जाता है। नाथपन्थ काले भेड़ की ऊन से बनी जनेऊ भी धारण करते हैं। मान्यता है कि नाथपन्थ में जिनके निगुरो (गुरु) नहीं होते उनके हाथ से जल ग्रहण नहीं करते। इसलिए नाथपन्थ गुरु शिष्य परम्परा का पालन करते हैं। गुरु कान में मन्त्र फूकते हैं और शिष्य कान में चीरा लगवा कर वैराग्य और दीक्षा का पालन जीवनपर्यंत करते हैं। नाथपन्थ में प्रत्येक गुरु की अपनी परम्परा है जिसके शिष्य परम्परा में भी अनेक नाथ है। इस प्रकार नाथ परम्परा की भी कई शाखाएँ है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पावनाथ के शिष्य परम्परा में कानिपा, सिद्धसांगरी, कालबेलिये और वामारंग शाखाओं का उल्लेख किया है।

नाथपन्थ और विलुप्त होती देशज ज्ञान परम्परा-

देशज ज्ञान परम्परासे सम्पन्न योगियों से संबन्धित अनेक किंवदन्तियाँ लोक में प्रचलित है। पावनाथ की शाखा कालबेलिए की उत्पत्ति की कथा कुछ इस प्रकार है- भस्मासुर का वध करने के लिए विष्णुजी ने मोहिनी का रूप धारण किया। उसके भस्म हो जाने के बाद

"विशेष प्रक्रिया के साथ जले हुए भस्म को कपूर में मिलाया जाता है। तैयार सूरमे को एक छोटी डिब्बी में भरकर रख लिया जाता है। कहा जाता है कि इस अंजन को लगाकर आंखों की रोशनी बढ़ती है, आँखों का जाला व अन्य रोग ठीक हो जाते हैं। प्राकृतिक ढंग से तैयार सूरमे को लगवाने के लिए लोग इन योगियों की प्रतीक्षा करते है।"

मोहिनी ने आदिनाथ शिव को पुकारा। मोहिनी को देखते ही शिव का वीर्य स्खलित हो गया और विष्णुजी ने अपने स्वरूप में प्रकट होकर वीर्य अपनी हथेली में झेल लिया और फिर बाँस की पुंगी में भर दिया। तब उन्होंने वीर्य से सनी अपनी हथेली को पीपल के पेड़ से पोंछा तो पीपलनाथ की उत्पत्ति हुई, फिर पत्थर से पोंछा तो पारसनाथ की उत्पत्ति हुई। गोबर से पोछा तो गोरखनाथ प्रकट हुए और हाथी के कान से पोंछा तो कानिफनाथ की उत्पत्ति हुई। जो बाद में कालबेलिये कहलाये। कालबेलिया जोगी यायावरी जीवन व्यतीत करते हैं। इनकी पहचान है दशनामी झोला। भिक्षाटन के लिए जिसे कँधे पर लटकाए गाँवों, नगरों और शहरो में योगी वेश में भिक्षा माँगने वाले कालबेलिये पन्थ की ध्वजा उठाए, नाथों की वाणी का गायन कर समाज में शिव भक्ति का अलख जगाते हैं। कानिफानाथ कालबेलियों के गुरु हैं। कालबेलिया मानते हैं कि उनके गुरु कानिफानाथ ने विषपान किया था तभी से वे कनियान कहलाये। कानिफानाथ को कानिपा, कानपा, कान्हापाद करपिया, कानेरीपाद आदि अनेक उपनामों से जाना जाता है। जिस प्रकार शिव का आभूषण सर्प है उसी प्रकार कालबेलिये सपेरे सर्प को अपनी पिटारी में रखते है। इन्हें सर्प की प्रजातियों और उनके गुणों का

गहरा ज्ञान होता है। यह साँप के काटने का उपचार भी जानते हैं।

कानिफानाथी जहाँ एक ओर नाथों की वाणी को जन-जन तक पहुंचाने का काम करते हैं वहीं यह जड़ी बूटियों, पेड पौधों, पशु पक्षियों के बारें में देशज ज्ञान भी रखते हैं। दीक्षा लेते समय वह अपने औषाधीय ज्ञान परम्पराको सिखाने और जनकल्याण के लिए उपयोग करने का प्रण लेतें हैं। इस समुदाय के जोगी आंखों के रोगों का उपचार के लिए एक विशेष प्रकार का सूरमा बनाने में दक्ष होतें हैं। सूरमा बनाने के लिए विशेष प्रजाति के साँपो की केचुली को दस दिनों तक गार की मटकी में रखते है, फिर साँप के जहर में मिलाकर उसको जलाया जाता है। विशेष प्रक्रिया के साथ जले हुए भस्म को कपूर में मिलाया जाता है। तैयार सूरमे को एक छोटी डिब्बी में भरकर रख लिया जाता है। कहा जाता है कि इस अंजन को लगाकर आंखों की रोशनी बढ़ती है, आँखों का जाला व अन्य रोग ठीक हो जाते हैं। प्राकृतिक ढंग से तैयार सूरमे को लगवाने के लिए लोग इन योगियों की प्रतीक्षा करते है। लोगों से प्राप्त भिक्षा पर ही अपना जीवन निर्वाह करने वाले योगी भिक्षा को अपने दशनामी झोले में समेट आगे बढ़ जाता है। इनके कंधे पर टंगा दशनामी झोला आदिनाथ का प्रतीक है। इस झौले के नौ कौने होते है जो नवनाथ के प्रतीक है। आदिनाथ समेत नौ नाथ को दशनामी झौले के रूप में उठाए हुए यह योगी पूरे देवलोक को जीवनभर अपने कंधे पर टाँगें रहतें हैं। सामान्य जन के रोग शोक का निवारण करने के लिए ही योगी भिक्षा लेता है और भिक्षा के रूप मे जो अन्न (सीधा) मिलता है उसको अपने झोले में डालकर कर देवलोक का प्रतीक दशनामी झोले को भोग लगता है और दान देने वाले को सुख समृद्धि का आशीर्वाद देकर अगले पड़ाव के लिए बढ़ जाता है। देशज ज्ञान से संपन्न यह योगी आज भी अपना आशीर्वाद यह कहकर देतें हैं

झोला डंडा अलख उच्चारण,
रोग शोक का करे निवारण॥

इस प्रकार नाथों की वाणी का गायन करने वाले योगी और प्राचीन देशज ज्ञान परम्पराको जन जन के बीच पहुंचाने वाला पन्थ, वंचितों और शोषितों के भीतर परोपकार की भावना जागने वाला, हर धर्म और संप्रदाय के लोगों को एक जगह नथ्थी करने वाला पन्थ ही नाथपन्थ कहलाता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. नाथ-संप्रदाय : हजारी प्रसाद द्विवेदी ,हिंदुस्तान ऐकेडमी ,दिल्ली।
2. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर ,लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद ,सं 2017
3. हिंदी साहित्य का दूसरा संस्करण: बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली , सं 1997
4. भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश : रामविलास शर्मा, किताबघर प्रकाशन ,नई दिल्ली , सं 2009
5. गोरख-बानी : डॉ. पीताम्बर बड़थ्वाल ,हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग विक्रम 2003
6. चौमासा : वर्ष-37 विशेषांक 117 नवम्बर 21 फरवरी 22 मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद , भोपाल।
7. गांव गांव गोरख नगर नगर नाथ : डॉ. श्री कृष्ण जुगनू, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली।
8. हिंदी और मराठी का निर्गुण संतकाव्य : प्रभाकर माचवे ,चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी , 1962.

***

गोरक्ष-विजय महाकवि विद्यापति द्वारा रचित एक नाटक है। इसका कथनोपकथन संस्कृत और प्राकृत में है। गीत कवि की मातृभाषा मैथिली में है। इसकी कथा गोरक्षनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ से सम्बन्धित है। महाकवि ने इस नाटक की रचना महाराजा शिवसिंह की आज्ञा से 14वीं शती में की थी।

सन्त तुकाराम की ईश्वरीय अवधारणा

श्री संजय गोस्वामी

लेखन के क्षेत्र में 1500 से अधिक लेख। संप्रति : हिमालय व हिंदुस्तान के संरक्षक सदस्य, ग्रामीण विकास संदेश, सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंस एंड रूरल डेवलपमेंट के सह संपादक, तथा विज्ञान गंगा पत्रिका,(बीएचयू)., सलाहकार बोर्ड के सदस्य हैं।

किसी गाँव में एक धनी मानी व्यक्ति था। उसके पास एक पुराना महल-जैसा घर था। वह पत्नी तथा बच्चों के साथ सुख से रहता था। कालान्तर में बच्चे बड़े हुए, परिवार बढ़ा, तो वह घर छोटा पड़ने लगा। अब दो प्रकार के मत सामने आये। कुछ लोगों ने कहा कि यहीं घर हमारा मूलस्थान है हम इसे छोड़कर नहीं जायेंगे। दूसरा मत था कि हम एक नया घर बना लें ताकि सभी एक साथ रह सकें। तीसरा मत भी सामने आया कि कुछ लोग पुराने घर में ही रहें तथा कुछ नये घर में। अब विवाद बढ़ने लगा। इसका समाधान निकाला गया कि इसी पुराने घर के चारों ओर विस्तार कर लिया जाये और सभी लोग एक साथ रहें। भारतीय संतमत यही समाधान प्रस्तुत करता है। संतमत के साथ पुरोहित वर्ग का जो विरोध है उसे भी हमें इसी रूप में देखना चाहिए। सन्त तुकाराम की गाथा में यह स्पष्ट हो जायेगा। तुकाराम महाराष्ट्र के सन्तों में से अन्यतम हैं, जिन्होंने सबको साथ लेकर चलने का संदेश दिया है।

तुकाराम महाराज 17वीं शताब्दी के महाराष्ट्र भक्ति मिशन के एक सन्त कवि थे। वह एक सम्मानाधिकारी थे, व्यक्तिगत वारकरी धार्मिक समुदाय के सदस्य थे। तुकाराम अपने अभंग और भक्ति कविताओं के लिए जाने जाते हैं और उन्होंने अपने समुदाय में भगवान की भक्ति के बारे में कई आध्यात्मिक गीत गाए हैं, जिन्हें स्थानीय तौर पर कीर्तन कहा जाता है।

तुकाराम का जन्म 1608 में पुणे जिले के देहु नामक गाँव में हुआ था; उनकी जन्मतिथि के बारे में विद्वानों में मतभेद है और सभी दृष्टिकोणों से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जन्म 1608ई. में हुआ था। उनके परिवार में तत्कालीन आठवें पुरुष विश्वंभर बाबा से विट्ठल की पूजा जारी रही। उनके कुल के सभी लोग नियमित (वारी) पंढरपुर जाते थे। देहू गाँव के साहूकार होने के कारण उनका परिवार वहाँ सम्मानित माना जाता था। उनका बचपन उनकी माँ कनकई और पिता बोल्होबा की देखरेख में बहुत ही सावधानी से बीता।

जब वे लगभग 18 वर्ष के थे, तो उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई और उसी समय उनकी पहली पत्नी और नवजात शिशु की भीषण सूखे के कारण भूख से मृत्यु हो गई। यह लिखना झूठ है कि सन्त तुकाराम उन दिनों बड़े जमींदार और साहूकार थे। उनकी दूसरी पत्नी जीजाबाई बहुत तेज स्वभाव की थीं। वह सांसारिक सुखों से विरक्त हो गये।

मन की शांति पाने के विचार से तुकाराम प्रतिदिन देहू गाँव के पास भवनाथ नामक पहाड़ी पर जाते थे और विट्ठल की याद में दिन बिताते थे।उनका परिवार कुनबी समुदाय से था। तुकाराम के परिवार का अपना खुदरा और साहूकारी व्यवसाय था, साथ ही खेती और व्यापार भी था। उनके पिता विठोबा के भक्त थे, जिन्हें हिंदू धर्म में भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है। सन्त तुकाराम की पहली पत्नी रखम्मा बाई थीं और उनका एक बेटा संथु भी था। सन् 1630-1932 के अकाल के दौरान उनके दोनों बेटे और दोनों पत्नियाँ भूख से मर गईं। उनकी मृत्यु और व्यापक गरीबी का तुकाराम परिवार पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा, जो बाद में महाराष्ट्र की सह्याद्रि पर्वत श्रृंखला में ध्यान करने चले गए।

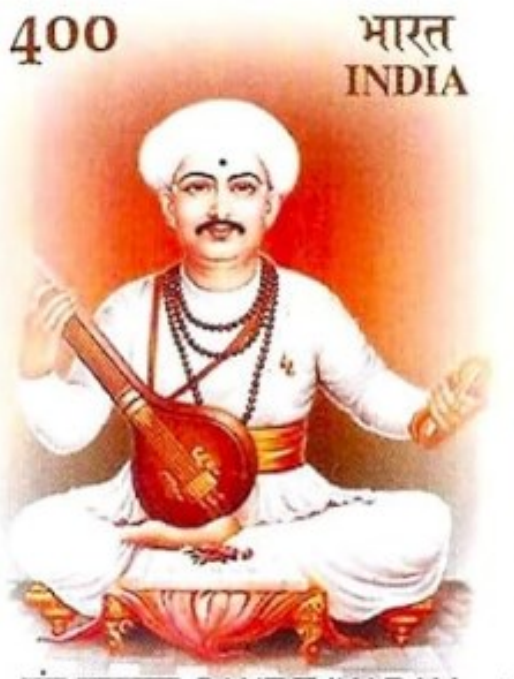

इसके बाद तुकाराम ने दूसरी शादी की और उनकी दूसरी पत्नी का नाम अवलाई जीजाबाई था। लेकिन उसके बाद उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ, भक्ति, सामुदायिक कीर्तन और अभंग काव्य में व्यतीत होने लगा। कैसे एक आम आदमी दुनिया का खेल खेलकर सन्त बन गया, किसी भी जाति-धर्म में जन्म लेकर भी पूर्ण भक्ति और सदाचार के बल पर आत्म-विकास किया जा सकता है। यह विश्वास आम आदमी के मन में स्थापित करना था, सन्त तुकाराम यानी तुकोबा, जो अपने विचार, आचरण और वाणी के अनुरूप जीवन जीते हैं, आम आदमी को प्रेरणा देते हैं कि उसे हमेशा कैसे रहना चाहिए।

उनके जीवन में एक समय ऐसा भी आया जब वे जीवन के पहले भाग में अपने साथ घटी दुर्घटनाओं से निराश हो गये। उनका जीवन से विश्वास उठ गया था। ऐसे में उन्हें किसी के सहारे की सख्त जरूरत थी, किसी के पास अस्थायी सहारा नहीं था. इसलिए उन्होंने अपना सारा बोझ पांडुरंगा पर डाल दिया और साधना शुरू कर दी, उस समय उनके पास कोई गुरु नहीं था।

भक्ति की परम्पराको कायम रखते हुए नामदेव ने भक्ति के अभंग की रचना की। तुकाराम ने भले ही संसार से मोह छोड़ने की बात कही हो, लेकिन उन्होंने कभी नहीं कहा कि संसार मत में मत रहो। सच कहें तो किसी भी सन्त ने कभी संसार त्यागने की बात नहीं की। उनकी कविताएँ विट्ठल और विठोबा को समर्पित थीं।सन्त तुकाराम महाराज अपने अभंग में कहते हैं, हमारे भगवान की महिमा देखो, वो भिलनी (शबरी) के झूठे बेर बड़े प्यार से व चाव से खाता है। क्योंकि भगवान सिर्फ व सिर्फ प्यार का भूखा होता है। उसके पास अष्टमहासिद्धि और क्षीरसागर है फिर भी वो उनको महत्त्व नहीं देता। सुदामा द्वारा लाये मुट्ठीभर सूखे पोहे भी वो बड़े प्यार से ग्रहण कर लेता है।

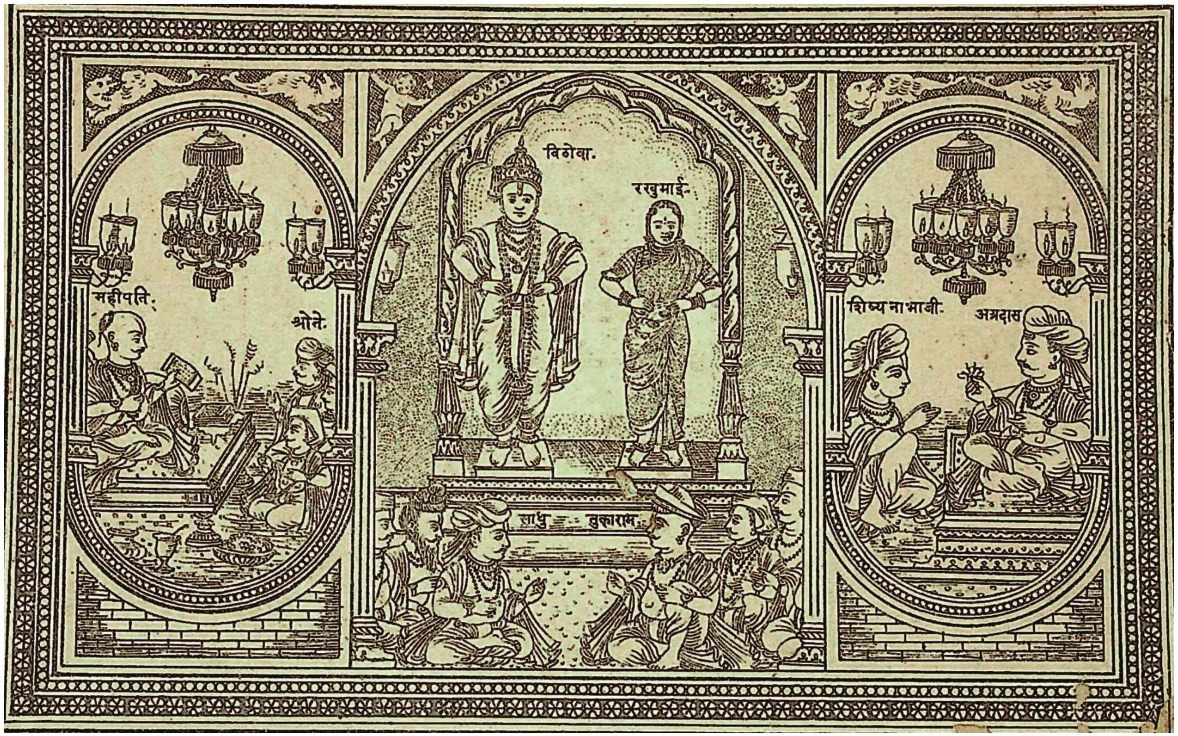

सन्त तुकारामचरित (1906ई.) मुंबई से प्रकाशित ग्रन्थ का मुखचित्र

तुकाराम महाराज कहते हैं वो झूठे हैं अथवा थोड़े भक्ति व प्यार के आगे इसका विचार भी उनके मन में नहीं आता। इस अभंग में सन्त तुकाराम महाराज ने श्री भगवान राम व श्रीकृष्ण का अपने भक्तों के प्रति असीम स्नेह का उदाहरण दिया है। ईश्वर आपके सच्चे भाव, स्नेह व प्यार का भूखा होता है। छोटा बड़ा उसके लिए सभी समान है। वो भेदभाव नहीं करता।

सन्त तुकाराम के भक्त 'वारकरी' अपनी पैदल यात्रा में जिसे दिंडी भी कहा जाता है रामकृष्णहरी कहते थकते नहीं है। गली-गली में, घर-घर तक विट्ठल नाम की गूंज पहुँचाते लोकगायक और संतकवि तुकाराम का नाम आते ही आंखों के सामने यही चित्र उभरता है। कवि, जिनके होंठों पर है विट्ठल-विट्ठल की गूंज, संत, जो प्रभु के अलावा और कुछ नहीं सोचते। तुकाराम ऐसे ही हैं, सरल और निश्छल। ईश की राह पर चलना ही था उनका जीवन। तुकाराम, यानी भक्ति का राग छेड़ते, प्रभु की बात करते साधु, लेकिन वे कबीर सरीखे क्रांतिकारी भी हैं। गली-गली में, घर-घर तक विट्ठल नाम की गूंज पहुँचाते लोकगायक और संतकवि तुकाराम का नाम आते ही आंखों के सामने यही चित्र उभरता है। कवि, जिनके होंठों पर है विट्ठल-विट्ठल की गूंज, संत, जो प्रभु के अलावा और कुछ नहीं सोचते। तुकाराम ऐसे ही हैं, सरल और निश्छल। ईश की राह पर चलना ही था उनका जीवन। तुकाराम, भक्ति का राग छेड़ते, प्रभु की बात करते साधु, लेकिन वे कबीर सरीखे क्रांतिकारी भी हैं। कबीर ने हरदम पाखंड का, जड़ता

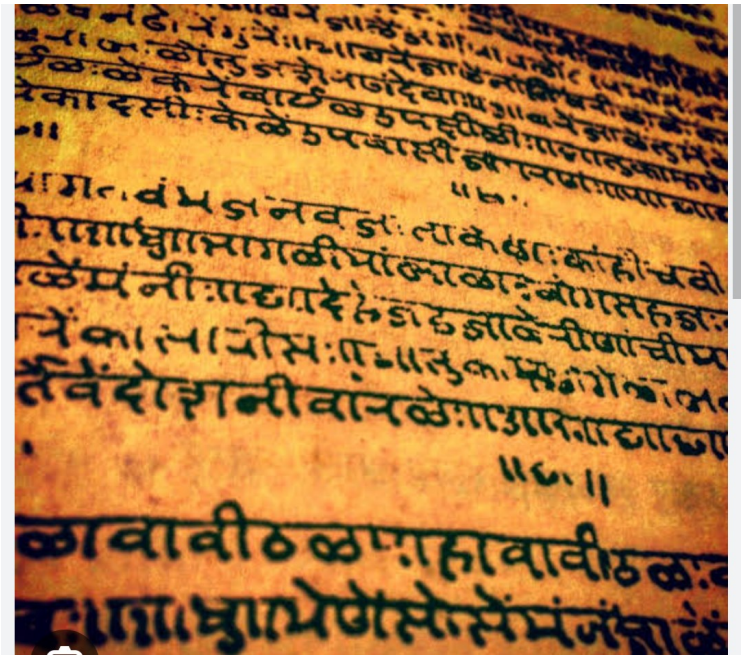

सन्त तुकाराम का हस्तलेख

का, थोथे कर्मकांड का विरोध किया। तुकाराम ने भी यही राह पकड़ी। दोनों का जीवन अंधविश्वास से जूझते हुए बीता।

बहुत-से पुरोहितों ने सन्त तुकाराम का प्रतिरोध किया, क्योंकि वे अभंग रचनाओं में पाखंड और कर्मकांड का उपहास उड़ाते थे। कुछ ने तुकाराम के अभंग रचनाओं की पोथी नदी में फेंक दी और धमकी दी, तुम्हें जान से मार देंगे। पुरोहितों ने व्यंग्य करते हुए कहा, यदि तुम प्रभु के वास्तविक भक्त हो, तो अभंग की पांडुलिपि नदी से बाहर आ जाएंगी। आहत तुकाराम भूख हड़ताल पर बैठ गए और अनशन के 13वें दिन नदी की धारा के साथ पांडुलिपि तट पर आ गई। आश्चर्य यह कि कोई पृष्ठ गीला भी नहीं था, नष्ट होना तो दूर की बात!

संतकवि तुकाराम पुणे के देहू कस्बे के छोटे-से काराबोरी परिवार में 17वीं सदी में जन्मे थे। उन्होंने ही महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन की नींव डाली। संतकवि तुकाराम का देहावसान 1650 में हुआ। तुकाराम ने दो विवाह किए। पहली पत्नी थीं रखुमाबाई। अभावों से जूझते हुए वे पहले रोगग्रस्त हुई, फिर उनका स्वर्गवास हो गया। दूसरी पत्नी थीं जीजाबाई। लोग उन्हें अवली भी कहते। जीजाबाई हरदम उलाहना देतीं, कुछ कमाओगे भी या ईश भजन ही करते रहोगे। तुकाराम की तीन संतानें हुई, संतू (महादेव), विठोबा और नारायण। सबसे छोटे विठोबा भी पिता की तरह भक्त ही थे। जीवन में दुविधाएँ तुकाराम की लगन पर विराम न लगा पाई। भगवत भजन उनके कंठ से अविराम बहते। वे कृष्ण के सम्मान में निशदिन गीत गाते और झूमते। हालांकि बाद में उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति भी सुधार ली और अंतत: महाजन बने। तुकाराम ने एक रात स्वप्न में 13वीं सदी के चर्चित सन्त नामदेव और स्वयं विट्ठल के दर्शन किए। सन्त ने तुकाराम को निर्देश दिया, तुम अभंग रचो और लोगों में ईश्वर भक्ति का प्रसार करो। तुकाराम कई बार अवसाद से भी घिरे। एक क्षण ऐसा आया, जब उन्होंने प्राणोत्सर्ग की ठानी, लेकिन इसी पल उनका ईश्वर से साक्षात्कार हुआ। वह दिन था और फिर सारा जीवन...तुकाराम कभी नहीं डिगे। उनका दर्शन स्पष्ट था, चुपचाप बैठो और नाम सुमिरन करो। वह अकेला ही तुम्हारे सहारे के लिए काफी है। ग्रन्थ पाठ और कर्मकांड से कहीं दूर तुकाराम प्रेम के जरिए आध्यात्मिकता की खोज को महत्त्व देते। उन्होंने अनगिनत अभंग

लिखे। कविताओं के अंत में लिखा होता, तुकाराम माने, यानी तुकाराम ने कहा। उनकी राह पर चलकर वारकरी संप्रदाय बना, जिसका लक्ष्य था समाजसेवा और हरिसंकीर्तन मंडल। इसके अनुयायी सदैव प्रभु सुमिरन करते।

तुकाराम का ईश्वर से निरंतर संवाद होता था। देह त्यागने से पहले ही उन्होंने पत्नी को बता दिया था, अब मैं वैकुंठ जाऊंगा। पत्नी को लगा कि एकदम अच्छे-भले तुकाराम ऐसे ही कुछ कह रहे होंगे, लेकिन धीरे-धीरे देहू में यह खबर फैल गई। लोगों ने देखा कि आकाश में ढेरों विमान हैं और तुकाराम उनमें से एक पर चढ़कर सदेह वैकुंठ गमन कर रहे हैं।

सन्त तुकाराम सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी के वारकरी संत-कवि थे। पंढरपुर के विठोबा तुकाराम के आदर्श थे। तुकाराम को वारकरी ने 'जगद्गुरु' कहा है। वारकरी संप्रदाय में उपदेश और कीर्तन के अंत में- 'पुंडलिक वरदे हरि विट्ठल, श्री ज्ञानदेव तुकाराम, पंढरीनाथ महाराज की जय, जगद्गुरु तुकाराम महाराज की जय' का जाप किया जाता है। जगद्गुरु तुकाराम एक लोक कवि थे। रंजले गंजले ने क्यों किया! जो लोग कहते हैं कि साधु को जानना चाहिए! भगवान को वहां जाना चाहिए!' ऐसे अभंग सन्त तुकाराम महाराज ने जन-जन को भगवान की भक्ति का सुगम मार्ग बताकर बताया।

उन्होंने वारकरी संप्रदाय की अखंड परम्पराका निर्माण किया। तुकाराम महाराज का उल्लेख एक सुधारक सन्त के रूप में किया जाता है जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दी में सामाजिक जागृति के युग की शुरुआत की थी। तुकाराम महाराज एक निडर यथार्थवादी और कभी-कभी समाज के पाखंड पर तीखे शब्दों में प्रहार करने वाले सन्त थे।

इस काल में महाराष्ट्र की भूमि पर अराजकता उत्पन्न हो गई थी। ऐसे समय में सन्त तुकाराम ने अपने साहित्य और कीर्तन के माध्यम से समाज को मार्गदर्शन देने का काम किया। तुकाराम महाराज एक दूरदर्शी एवं निर्भीक सन्त कवि थे। अभंग सन्त तुकाराम का भक्ति काव्य है, ये अभंग महाराष्ट्र की सांस्कृतिक परम्पराके महान प्रतीक हैं। वारकरी, भक्त, लेखक, विद्वान और सामान्य उत्साही आज भी उनके अभंगों का अध्ययन करते हैं। यहां तक कि गांवों के अशिक्षित लोगों के दैनिक पाठ में भी अभंग होता है।उन्हें भागवत धर्म का चरमोत्कर्ष बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे महाराष्ट्र के हृदय में मजबूती से स्थापित हैं। मंत्रों की पवित्रता वाणी में समाहित हो जाती है। उनकी कविता की मिठास और भाषा की समृद्धि अतुलनीय है। सन्त तुकाराम के अभंग का अनेक प्रकार से अध्ययन करके उसके सौंदर्य को उजागर करने का प्रयास किया है।, उन्हें जनता के मुख से मौखिक संस्करण सुनने के बाद कहानी के जीवित होने का वास्तविक अनुभव हुआ। इंद्रायणी नदी के तट पर लाखों लोग अभंग गाथा का गान करने लगे। इस समय तुकाराम महाराज को एहसास हुआ कि उनकी अभंग, उनकी गाथा डूबी नहीं है। इसलिए यह आज भी लोगों की जुबान पर जिंदा है। यह आपके काम की सच्ची और निष्पक्ष स्वीकृति है। सन्त तुकाराम सचमुच इस युग के लोक सन्त थे। वे बहुजन समाज को जागृत करने और लोगों से देवधर्म संबंधी विचार मनवाने में सफल रहे। उन्होंने ईश्वर धर्म के साथ-साथ भोली-भाली मान्यताओं में व्याप्त अराजकता को नष्ट करने का प्रयास किया।

सन्त तुकाराम ने सामाजिक मानस पर पड़े अंधविश्वास के पर्दे को हटाकर लोगों को एक नया धर्म और एक नई भाषा देने का काम किया। सन्त तुकाराम का धार्मिक क्रांति का सामाजिक प्रबोधन आज भी समाज के लिए मार्गदर्शक है। उनके अभंग मानव जीवन के लिए लाभकारी रहे हैं। लौकिक अर्थ में सन्त

तुकाराम आठवीं पीढ़ी के नायक थे।

वी.के. राजवाड़े ने कुछ हद तक सन्त आंदोलन की आलोचना की है. सन्त आंदोलन के सन्दर्भ में वे लिखते हैं, ''सन्तों के सन्त आंदोलन से महाराष्ट्र तीन शताब्दियों तक पंगु बना रहा, लेकिन सन्त रामदास इसके अपवाद थे. भगवद्भक्त तुकाराम, सब महात्माओं श्रीशंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, जयदेव, कबीर, नानक, इत्यादि के जीवन भिन्न प्रकार के होते हुए भी एक ही प्रकार के थे। प्रांतीय परिस्थिति के कारण इन के प्रयत्न यद्यपि अलग-अलग दीख पड़ते हैं तथापि इन सबों के जीवन में एक सूत्र साधारण-सा जान पड़ता है। वह है जनता की सेवा करते हुए उन्हें जगाना, और जगाते हुए भी जनता को इस का परिचय न कराना कि "मैं तुम्हें जगा रहा हूँ। दीपक का काम अपने को जला कर अपने स्नेह की आहुति परोपकारार्थ देने का है।"

वह वेचारा यह नहीं विचार करता कि मेरा प्रकाश कितना पड़ेगा, और किस-किस कोने का अँधेरा उस से दूर होगा। न वह ऐसी डींग मारता है कि देखो, मैं अँधेरा दूर करनेवाला हूँ, मेरी ही शरण लो तो अँधेरे से बचोगे, अन्यथा नहीं। खुद को जलाते ही उस ज्योति से जो चमक निकलती है, वही लोगों को उस का दिव्य जीवन दिखला देती है। ठीक इसी तरह महात्मायों के जीवन रहते हैं। उन के विशुद्ध आचरण को देख कर लोग स्वयं ही अपने को सुधारते हैं और अज्ञान-पथ को छोड़ सन्मार्ग से चलने लगते है। याज के दांभिक दिनों में इस बात का ज्ञान परमावश्यक है कि हमें जो कुछ करना हो, वह हम शांति -पूर्वक दूसरों को न दुखाते हुए करें। यदि तुकाराम की जीवनी को पढ़ कर हम भारत -निवासी इस बात को भलीभाँति समझ लें, तो लिखना सफल अवश्य हो जावेगा।

सन्त तुकाराम के हस्तलिपि दोहे

भारत की आध्यात्मिक परम्परामें सन्त तुकाराम: भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहां ईश्वररूपी सन्त महात्माओं का समय समय पर अवतरण हुआ। जिनके कारण हमारी हिन्दू संस्कृति सदियों से अखंड बनी हुई है।विश्व के इतिहास में कई सभ्यताओं को समाप्त होते देखा है क्योंकि वो अपनी परंपराओं को संजोकर न रख सके। हमारी आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परंपराओं पर सदियों तक हमले होते रहे और आज भी हो रहे हैं पर हमारे सन्तों ने हमारी इस पावन संस्कृति को मिटने नहीं दिया। भारत की आध्यात्मिक परम्पराको नष्ट करने में पूर्व में असुरी शक्तियां व वर्तमान में वामपन्थ ताकतें सदैव प्रयत्नशील रही हैं क्योंकि वो जानते हैं कि भारत वर्ष के करोड़ों लोगों को एकसूत्र में पिरोने का कार्य सिर्फ व सिर्फ हमारा धर्म ही कर सकता है। यदि हमारी धार्मिक मान्यताओं को नष्ट कर दिया जाये तो राष्ट्र स्वत: ही नष्ट हो जाएगा।सबसे पहले नमन करते हैं इस धरा पर अवतरित हुए असंख्य सन्तों को। इन अवतार पुरुषों को। इनमें से ही एक हैं सन्त तुकाराम महाराज जिन्होंने भागवत धर्म की पताका को थामे रखा और भक्ति मार्ग को सहज व सरल बनाया। उनके इन सरलीकरण के प्रयासों को उनके नास्तिक होने के साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। इस सरलीकरण को उन्होंने अपनी कविता, कीर्तन व अभंग के माध्यम से जन जन तक पहुँचाया।यदि हम इस महान सन्त के कार्यों को देखें तो वो कभी भी धर्म के मार्ग से दूर नही हटे। वो निरंतर धर्म का संरक्षण व संवर्धन करते रहे।आजीवन अंतिम सांस तक। उन्होंने 1632 से 1650 के दरम्यान अभंगों का लेखन किया। उनकी अभंग गाथा में 4500 अभंगों का समावेश हैं। अगर हम इन अभंगों का अध्ययन करते हैं तो सन्त तुकाराम महाराज के ये सभी अभंग मनुष्य को सुखी व समाधानी जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। ये अभंग प्रेम, भक्ति, जीवन, परिवार, समाज, व्यवसाय, राजधर्म, राष्ट्रधर्म, त्याग,

समर्पण व मोक्ष आदि के प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं।सन्त तुकाराम महाराज नास्तिक नहीं थे। वामपन्थ उन्हें नास्तिक सिद्ध करने पर तुले हुए हैं। उनके अभंग, कीर्तन व कविताओं को जब हम पढ़ते हैं, सुनते हैं तो हमें उनमें अध्यात्म व भक्ति का ही बोध होता है। बस थोड़ासा अंतर दिखाई देता है वो है भक्तिमार्ग को सहज व सरल बनाना व उसे विश्वव्यापी बनाना।इससे यही सिद्ध होता है कि वे नास्तिक नहीं थे अपितु उन्होंने भक्तिमार्ग को हर वर्ग तक पहुँचाने के लिए उसे सहज व सरल बनाया। उस समय अज्ञान सर्वदूर था। हमारे धर्म का ज्ञान कुछ लोगों तक ही सीमित था। उसे अत्याधिक कठिन बनाया गया था। हमारी आध्यात्मिक परंपराओं को सहज रूप से जनमानस तक पहुँचाने का कार्य सन्त तुकाराम महाराज ने किया। सन्त तुमराम महाराज भगवान विठ्ठल (हरि) के अनन्य भक्त थे। उन्होंने 'हरिनाम' की महिमा का महत्त्व लोगों को समझाया। तब क्लिस्ट मंत्रों का जाप करना हर एक व्यक्ति के लिए संभव नहीं था। ऊँचनीच का भेदभाव उस समय चरम पर था। उन्हें लगा कि कही हमारा समाज इस कारण ईश्वर को ना भूल जाए। हमारी ईश्वर के प्रति आस्था ना कम हो जाए। ईश्वर भक्ति मनुष्य को निष्ठावान, सत्यवान, कर्तव्यपरायण, धर्म के प्रति करबद्ध रखने के साथ एकजुट व जाग्रत रखने की सबसे बड़ी शक्ति है। इससे मनुष्य के सांसारिक एवं सामाजिक जीवन में सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह बढ़ेगा। मनुष्य सत्कर्म की ओर बढ़ेगा। इससे आध्यात्मिक एवं सामाजिक एकता को बढ़ावा मिलेगा। धर्म पर सबका एकसमान अधिकार होगा। लोग पाप व कुकृत्य करने से डरेंगे। वे कहते है....

चाल केलासी वेगळा। बोल विठ्ठल वेळोवेळी॥
तुज पाप चि नाही ऐसे। नाम घेता जवळी वसे॥

इस अभंग के माध्यम से वे हरि का नामस्मरण नित्य करने की सलाह देते है। अगर तुम नित्य हरि का नाम लेते रहोगे तो तुम्हारी पाप करने की इच्छा ही नहीं होगी। और ऐसा स्वार्थ के कारण लगता भी है तो वह विचार अपने आप ही नष्ट हो जाएगा। तेरे नामस्मरण की शक्ति व निरंतरता के कारण खुद ईश्वर तेरे साथ होगा। और इस कारण तू किसी भी तरह का पाप कर ही नहीं पायेगा।

उन्होंने जनमानस को नामस्मरण के लिए एक सहज व सरल मन्त्र दिया 'रामकृष्ण हरि' जिससे भक्तिमार्ग के द्वार सबके लिए खुल जाए।

'तुकाराम म्हणे तुम्ही चला याचि वाटे।
भरवशाने भेटे पांडुरंग।

सुलभ भक्तिपन्थ का मार्ग दिखाते हुए वे कहते है अगर आप इस मार्ग से निष्ठा के साथ चलते रहोगे तो आपको विश्वास के साथ हरि का सानिध्य प्राप्त होगा। वे एक समाजसेवी भी थे। हमारा सामाजिक दायित्व क्या है उसके प्रति अपने भाव कैसे होने चाहिए? ईश्वर को कहाँ ढूढ़ना है तो वे कहते है...

जे का रंजले गांजले। त्यासी म्हणे जो आपुले॥
तोचि साधु ओळखावा। देव तेथेचि जाणावा॥

इसका अर्थ है, जो गरीब है, जरूरतमंद है उस व्यक्ति को जो अपना समझकर उसकी सेवा करेगा, उसकी झोली भरेगा। उसका कल्याण करेगा। वही सच्ची ईश्वर सेवा होगी क्योंकि ईश्वर का वास उन्हीं में होता है।

सन्त तुकाराम महाराज ने प्रपंच व परमार्थ का समन्वय साधकर जीवन को कैसे कृतार्थ के मार्ग पर ले जा सकते है इसका विचार जनमानस को दिया। वे कहते हैं 'आधी केले मग सांगितले।' जब जब वे जनमानस को मार्गदर्शित करते थे तब सबसे पहले उसे अपने आचरण में लाते थे।

ऐका महिमा आवडीचीं। बोरें खाय भिलटीचीं॥1॥
थोर प्रेमाचा भुकेला। हा चि दुष्काळ तयाला॥धृ॥

अष्टमा सिद्धींला। न मनी क्षीरसागराला॥2॥

पव्हे सुदामदेवाचे। फके मारी कोरडे च॥3॥

न म्हणे उच्छिष्ट अथवा थोडे। तुकाराम म्हणे भक्तीपुढें॥4॥

तुकाराम ने कितने अभंग लिखे, इनका प्रमाण नहीं मिलता, लेकिन मराठी भाषा में हजारों अभंग तो लोगों की जुबान पर ही हैं। पहला प्रकाशित रूप 1873 में सामने आया। इस संकलन में 4607 अभंग संकलित किए गए थे। तुकाराम गाथा की लगभग 3,700 कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद फ्रेजर और मराठे द्वारा 1909 और 1915 के बीच तीन खंडों में प्रकाशित किया गया था। 1922 में, फ्रेजर और एडवर्ड्स ने तुकाराम की कविताओं के कुछ अनुवादों को शामिल करते हुए उनकी जीवनी और धार्मिक विचारों को प्रकाशित किया और ईसाई धर्म के साथ तुकाराम के दर्शन और धर्मशास्त्र की तुलना भी शामिल की। डेल्यूरी ने 1956 में, तुकाराम की धार्मिक विरासत के परिचय के साथ तुकाराम की कविता के चयन का एक मीट्रिक फ्रेंच अनुवाद प्रकाशित किया (डेल्यूरी ने उन्हें तुकाराम के रूप में लिखा है)। डॉ अरुण कोलटकर ने 1966 में तुकाराम की कविताओं के अवंत-गार्डे अनुवाद के छह खंड प्रकाशित किए। रानाडे ने एक आलोचनात्मक जीवनी और कुछ चयनित अनुवाद प्रकाशित किये हैं।

डॉ. दिलीप चित्रे ने सेज़ तुका नामक पुस्तक में सन्त तुकाराम की रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया, जिसके लिए उन्हें 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। तुकाराम की चुनिंदा कविताओं का अनुवाद और प्रकाशन डैनियल लाडिंस्की ने किया। चंद्रकांत कालूराम म्हात्रे ने चयनित कविताओं का अनुवाद किया, व तुकाराम की एक सौ कविताएँ के रूप में प्रकाशित किया।

सन्त तुकाराम मराठी होते हुए भी उनके दोहे व लोकगीतों में हिंदी भी आता हैं जो ईश्वर के प्रति अपार श्रद्धा को व्यक्त करती है। तुकाराम गाथा की लगभग 3,700 कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद फ्रेजर और मराठे द्वारा 1909 और 1915 के बीच तीन खंडों में प्रकाशित किया गया था। 1922 में, फ्रेजर और एडवर्ड्स ने तुकाराम की कविताओं के कुछ अनुवादकों को शामिल करते हुए उनकी जीवनी और धार्मिक विचारों को प्रकाशित किया, और इसमें ईसाई धर्म के साथ तुकाराम के दर्शन और धर्मशास्त्र की तुलना भी शामिल थी। डेल्यूरी ने 1956 में, तुकाराम की धार्मिक विरासत के परिचय के साथ तुकाराम की कविता के चयन का एक मीट्रिक फ्रेंच अनुवाद प्रकाशित किया (डेल्यूरी ने उन्हें तुकाराम के रूप में लिखा है) अन्य संतो का तुकाराम से जुड़ाव है या नहीं, यह कम से कम कुछ हद तक उन स्रोतों पर निर्भर होना चाहिए जो उस तक पहुँच प्रदान करते हैं। उनका अधिकतर लेख महीपति द्वारा लिखे गए है, हम पूरी तरह से महीपति की जीवनी पर भरोसा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वे तुकाराम के जीवित रहने के एक शताब्दी बाद, अनिश्चित स्रोतों के आधार पर और एक ऐसे लेखक द्वारा लिखे गए थे, जिन्हें अपने स्रोतों के बारे में समकालीन इतिहासकार की चिंता नहीं थी। पांचवां भाग वर्ष 1862 में, दूसरा वर्ष 1864 में, चौथा वर्ष 1866 में पूरा हुआ और फिर अगले दो भाग पांच भागों में पूरे हुए। सन् 1868 ई. एक स्वतन्त्रग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यह गाथा किस हस्तशिल्प पर आधारित है? मेल नहीं खा सका।

हालाँकि, गाथाओं में प्रस्तुत ग्रन्थों के बीच अंतर की तुलना करने पर, "सवुसंग्रही" गाथाओं से यह प्रतीत होता है कि मूल हस्तशिल्प पंढरपुर परम्पराके थे। लगभग इसी समय, रावसाहेब चवस्वनाथ नारायण पंढरपुर के हस्तशिल्प से लेकर मुंबई में गणपत कृष्णाजी के प्रिंटिंग प्रेस तक, मंदचालक से प्रेरित एक और गाथा

प्रकाशित हुई थी। यह गाथा 1789 (1867 ई.) के आसपास दो भागों में प्रसिद्ध है। प्रत्येक भाग के आरंभ में निम्नलिखित मच्छति चाडली है। "मई 1786-87 [ए.डी.एस. 1864-65] में पंढरपुर क्षेत्र में, एक स्नेहा ने तुकाराम की गाथाओं की एक प्रति बनाई और उन्हें पढ़ा। यह सुनिश्चित करने के लिए कि यह जनता को स्पष्ट रूप से दिखाई दे, इसे सुपाठ्य अक्षरों और स्पष्ट स्याही में मुद्रित किया गया है तुकाराम के मुख से समय-समय पर अनायास निकलने वाली 'अभंग' वाणी के अलावा उनकी कोई अन्य विशेष साहित्यिक कृति नहीं है। वहीं, उनके शिष्यों द्वारा लिखे गए लगभग 4000 अभंग आज भी उपलब्ध हैं।सन्त ज्ञानेश्वर द्वारा लिखित 'ज्ञानेश्वरी' और श्री एकनाथ द्वारा लिखित 'एकनाथी भागवत' बारकरी संप्रदाय के प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ हैं। इस वंदमय की छाप तुकाराम की भुजाओं पर दिखाई देती है। तुकाराम ने अपने तपोकाल के दौरान इन प्राचीन सन्तों के ग्रन्थों का गहराई से और भक्तिपूर्वक अध्ययन किया। इन तीनों सन्त कवियों की रचनाओं में एक ही आध्यात्मिक सूत्र पिरोया हुआ है और तीनों के अंतरतम आध्यात्मिक विचार भी एक जैसे हैं। ज्ञानदेव की मधुर वाणी काव्यात्मक भावों से सुसज्जित है, एकनाथ की भाषा विस्तृत एवं सरस है, परन्तु तुकाराम की वाणी सूत्रबद्ध, संक्षिप्त, रमणीय एवं हृदयस्पर्शी है।तुकाराम की कविताओं तक पहुँचने के लिए उन पर निर्भर भी नहीं रह सकते, कम से कम उनके इतिहास के सफल आलोचनात्मक अध्ययन के बिना, क्योंकि यह संभव है कि जिन कविताओं का श्रेय अब उन्हें दिया जाता है उनमें से कई बाद में लिखी गई थीं। सबसे अच्छे रूप में, तुकाराम की कृतियाँ, जैसा कि वर्तमान में मौजूद है, हमें केवल इस बात तक पहुँच प्रदान करती है कि वारकरी समुदाय ने समय के साथ उनके अनुभव का प्रतिनिधित्व कैसे किया है। इसकी शुरुआत में, जिजाई के साथ तुकाराम के रिश्ते की कहानी में उनके धार्मिक अनुभव के सामाजिक प्रभाव का विवरण पाते हैं। यह एक ऐसी कहानी है जो तुकाराम द्वारा सन्निहित सांसारिक चिंताओं के प्रति उदासीनता का जश्न मनाती है, भले ही यह उनकी पत्नी द्वारा दर्शाए गए सांसारिक लोगों की निंदा को भड़का सकती हो। हालाँकि, उन स्रोतों की प्रकृति के कारण जो हमें सत्रहवीं शताब्दी में वापस ले जाते हैं हो भी सकता है और नहीं भी , यह शिक्षण वास्तव में तुकाराम के दर्शन और धर्मशास्त्र पर आधारित है। सन्त तुकाराम ने इस बात पर बल दिया है कि सभी मनुष्य परमपिता ईश्वर की संतान हैं और इस कारण समान हैं। सन्त तुकाराम द्वारा 'महाराष्ट्र धर्म' का प्रचार हुआ जिसके सिद्धांत भक्ति आंदोलन से प्रभावित थे। सन्तों की मंडली में श्री तुकाराम का स्थान अद्वितीय है। सन्त ज्ञानेश्वर द्वारा लिखित 'ज्ञानेश्वरी' और श्री एकनाथ द्वारा लिखित 'एकनाथी भागवत' बारकरी संप्रदाय के प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ हैं। इस वंदमय की छाप तुकाराम दिखाई देती है। तुकाराम ने अपने तपोकाल के दौरान इन प्राचीन सन्तों के ग्रन्थों का गहराई से और भक्तिपूर्वक अध्ययन किया। इन तीनों सन्त कवियों की रचनाओं में एक ही आध्यात्मिक सूत्र पिरोया हुआ है और तीनों के अंतरतम आध्यात्मिक विचार भी एक जैसे हैं। ज्ञानदेव की मधुर वाणी काव्यात्मक भावों से सुसज्जित है, एकनाथ की भाषा विस्तृत एवं सरस है, परन्तु तुकाराम की वाणी सूत्रबद्ध, संक्षिप्त, रमणीय एवं हृदयस्पर्शी है।तुकाराम का अभंग वाङ्मय अत्यंत आत्मोन्मुख होने के कारण इसमें उनके आध्यात्मिक जीवन की पूर्ण झलक मिलती है। पारिवारिक समस्याओं से त्रस्त एक सामान्य व्यक्ति किस प्रकार आत्म-साक्षात्कारी सन्त बन सकता है, यह उनके अभंगों में स्पष्ट दिखाई देता है। उनमें उनके आध्यात्मिक चरित्र की तीन अवस्थाएँ भौतिक रूप में दिखाई देती

हैं।साधक की प्रथम अवस्था में तुकाराम अपने मन में किये गये संकल्प के अनुसार संसार से निवृत्त होकर परोपकार की ओर प्रवृत्त दिखाई देते हैं।दूसरे चरण में ईश्वर प्राप्ति के अपने प्रयासों में असफलता देखकर तुकाराम अत्यधिक निराशा की स्थिति में रहने लगे। इस अनुभव की निराशा का जो विस्तृत चित्रण उन्होंने अंभंग वाणी में किया है, उसकी हृदय विदारक गहराई मराठी भाषा में सर्वथा अद्वितीय है।

तुकाराम की अधिकांश कविताएँ अखण्ड छंद में हैं, हालाँकि, उन्होंने रूपक रचनाएँ भी की हैं। काव्यात्मक दृष्टि से सभी रूपक उत्कृष्ट हैं। उनका और उनका गाना श्रोताओं के कानों तक पहुंचते ही उनके दिलों पर छा जाने की अद्भुत क्षमता रखता है। उनकी कविता में अलंकारों या शब्दों के चमत्कार की प्रचुरता नहीं है। उनके अभंगों का निरूपण किया जाता है। कम शब्दों में महान अर्थ व्यक्त करने की उनकी कुशलता मराठी साहित्य में अद्वितीय है।तुकाराम की स्वयंसिद्ध अशाब्दिक वाणी आम लोगों को भी बहुत प्रिय है। इसका मुख्य कारण यह है कि सामान्य मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने वाले सुख, दुःख, आशा, निराशा, मोह, लोभ आदि की अभिव्यक्ति इसमें दिखाई देती है। तुकाराम के वाडमान्य ने लोगों के दिलों में एक अहम स्थान हासिल कर लिया है। ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि सन्तों ने भागवत धर्म की पताका को अपने कंधों पर उठाया था लेकिन तुकाराम ने अपने जीवनकाल में ही इसे ऊंचे स्थान पर फहराया। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान को सुलभ बनाया और भक्ति का प्रचार-प्रसार करके बुजुर्गों के लिए भक्ति का मार्ग अधिक आसानी से सुलभ कराया।तुकाराम ने अपने तपस्वी जीवन के दौरान इन प्राचीन सन्तों के ग्रन्थों का गहराई से और भक्तिपूर्वक अध्ययन किया। इन तीनों सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव तुकाराम, कवियों की रचनाओं में एक ही आध्यात्मिक सूत्र बुना हुआ है और तीनों एक ही आध्यात्मिक विचार साझा की हैं। ज्ञानदेव की मधुर वाणी काव्यात्मक भावों से विभूषित है, एकनाथ की भाषा विस्तृत एवं सरस है, स्वभाव से स्पष्टवादी होने के कारण उनकी वाणी में कठोरता झलकती थी क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य समाज से बुराईयों को मिटाना और धर्म की रक्षा करना था। वे सदैव सत्य पर अड़े रहे और किसी के सुख-दुख की परवाह न करते हुए धर्म की रक्षा के साथ-साथ पाखंड का खंडन करने का कार्य भी निरंतर करते रहे। उन्होंने दुष्ट संतों, अनुभवहीन पोथीपंडी, शरारती पुजारियों आदि पर ताना मारा है, इस प्रकार ईश्वर प्राप्ति की साधना पूर्ण करने के बाद तुकाराम के मुख से निकला उपदेश अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक है। तुकाराम भले संसार में नहीं हैं, लेकिन उनके अभंग जन-जन के कंठ में बसे हैं और यह संदेश, प्रभु को अपने जीवन में दीनों की सेवा करो और देखोगे कि ईश्वर सब में है। इस प्रकार भगवत्प्राप्ति की साधना पूर्ण होने पर तुकाराम के मुख से जो उपदेश निकला वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक है। स्वभाव से स्पष्टवादी होने के कारण उनकी वाणी में कठोरता इसलिए दिखाई देती थी क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य समाज से दुष्टों का सफाया कर धर्म की रक्षा करना था। वे सदैव सत्य का पालन करते रहे और किसी के सुख-दुख की परवाह न करते हुए धर्म की रक्षा के साथ-साथ पाखंड के खंडन का कार्य भी निरंतर करते रहे। उन्होंने दुष्ट संतों, अनुभवहीन पोथीपंडियों, शरारती धार्मिक नेताओं आदि की कड़ी आलोचना की है। तुकाराम हृदय से भाग्यवादी थे, इसलिए उनके द्वारा चित्रित मानव जगत का चित्र निराशा, असफलता और चिंता से रंगा हुआ है, हालाँकि, उन्होंने कभी भी ऐसी सलाह नहीं दी। सांसारिक लोग 'संसार का त्याग' करते हैं।

देहु में तुकाराम से जुड़े स्थान जो आज भी मौजूद

हैं:

तुकाराम महाराज जन्म स्थान मंदिर, देहु - वह स्थान जहाँ तुकारामजी का जन्म हुआ था, जिसके चारों ओर बाद में एक मंदिर बनाया गया था

सन्त तुकाराम वैकुंठस्थान मंदिर, देहु - जहां से तुकारामजी अपने नश्वर रूप में वैकुंठ (भगवान का निवास) पर चढ़े थे; इस मंदिर के पीछे इंद्रायणी नदी के किनारे एक सुन्दर घाट है

सन्त तुकाराम महाराज गाथा मंदिर, देहू - आधुनिक संरचना; तुकाराम की एक बड़ी मूर्ति वाली विशाल इमारत; गाथा मंदिर में, तुकाराम महाराज द्वारा रचित लगभग 4,000 अभंग (छंद) दीवारों पर उकेरे गए थे।

सन्त तुकाराम महाराज 17वीं शताब्दी के मराठी कवि, हिंदू सन्त थे, वह वर्करी संप्रदाय के सन्त थे जो महाराष्ट्र, भारत में भगवान विथोबा की पूजा करता है उनकी शिक्षाओं का सार यह है कि मनुष्य को संसार के क्षणिक सुख के बजाय ईश्वर के शाश्वत सुख को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। उन्होंने सांसारिक लोगों को 'संसार त्याग दो' जैसी सलाह कभी नहीं दी। उनकी शिक्षाओं का सार यह है कि मनुष्य को संसार के क्षणिक सुख के बजाय ईश्वर के शाश्वत सुख को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

ग्रन्थ सूची:

1. डॉ. नालुले कबीर और तुकाराम की कविता में समाजवाद - तुलनात्मक अध्ययन
2. डॉ. गोपाल राव बेनारे - सार्थ टी उकरमाची अभंग गाथा - अभंग क्रमांक। 2239
3. डॉ. गोपाल राव बेनारे - सार्थ तुकारामची अभंग गाथा -
4. डॉ. निर्मल कुमार फडकुले - सन्त टी उकाराम: एक प्रतिबिंब
5. डॉ. गोपाल राव बेनारे - सार्थ उकरमाची अभंग गाथा
6. अय्यप्पनिकर, के.; अकादमी, साहित्य (1997)। मध्यकालीन भारतीय साहित्य: एक संकलन। साहित्य अकादमी. आईएसबीएन 81-260-0365 -0।
7. "त्रयंबक शंकर शेजवलकर निवादक लेखसंग्रह" लेखक टी एस शेजवलकर (संग्रह- एच वी मोटे, परिचय- जी डी खानोलकर)
8. जॉन होयलैंड (1932), एक भारतीय किसान रहस्यवादी: तुकाराम से अनुवाद, लंदन: एलनसन, ओसीएलसी 504680225
9. विल्बर डेमिंग (1932), तुकाराम से चयन, क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी, ओसीएलसी 1922126
10. प्रभाकर माचवे (1977), तुकाराम की कविताएँ, यूनाइटेड राइटर, ओसीएलसी 4497514
11. दिलीप चित्रे (1970), द भक्त ऐज़ ए पोएट: सिक्स उदाहरण्स फ्रॉम तुकाराम पोएट्री, डेलोस: ए जर्नल ऑन एंड ऑफ ट्रांसलेशन, वॉल्यूम।

***

आज भी मध्यकालीन जनभाषा के अनेक सन्त-साहित्य अप्रकाशित हैं, जिनकी पाण्डुलिपियाँ राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन (भारत सरकार के कला एवं संस्कृति विभाग की संस्था) द्वारा अपने सर्वेक्षण के क्रम में सामने लायी गयी हैं। विद्वानों से अपेक्षा है कि इनका अध्ययन कर इन्हें भारतीय ज्ञान-परम्परा में स्थापित करेंगे

प्रेमानुरागी सुन्दर कुंवरि

आयुष्मती शैरिल शर्मा
पता -1035 शिवाजीनगर, महामाया मंदिर के पास, पिलखुवा 245304, जिला हापुड़, (उत्तर प्रदेश)

18वीं शती में राजस्थान के रूपनगर, कृष्णगढ़ (किशनगढ़) में राठौर वंशीय महाराज राजसिंह एवं महारानी बांकावती की पुत्री तथा संतकवि नागरी दास की बहन सुन्दर कुँवरि कृष्णभक्ति परम्परा की श्रेष्ठ कवियित्री रही हैं। इनका विवाह संवत् 1822 वि. में राघवगढ़ के खींची राजवंश में महाराज बलवंत सिंह के साथ हुआ। इन्होंने 12 ग्रन्थों की रचना की थी, जिनमें अधिकांश अभी अप्रकाशित हैं। मित्रशिक्षा नामक ग्रन्थ तो आजतक अज्ञात है। हमारी प्राक्तन पीढ़ी के विद्वानों ने जिस प्रकार पाण्डुलिपियों से ऐसे कवियों की रचनाएँ खोजकर उन्हें सम्पादित कर जन-सुलभ कराया तो आज भविष्य हमसे भी यह अपेक्षा रखती है कि हम भी अपना दायित्व पूरा करें। इस दिशा में ऐसे आलेख महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं जो हमें केवल सूचना प्रदान करते हैं। इनके आधार पर हमें अग्रतर कार्य के लिए प्रवृत्त होना चाहिए। आज भारत में पाण्डुलिपियों के सम्बन्ध में जो सर्वेक्षण विवरण सामने आ रहे हैं उनसे पता चलाता है कि अभी बहुत कुछ करना शेष है। जितने प्रकाशित हैं, उनसे कम अप्रकाशित भी नहीं होंगे।

भक्ति आंदोलन के मध्यकाल ने भारतीय संस्कृति को विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावित किया है जिसका गहन स्तरीय प्रभाव हमें उस काल के साहित्य में दिखता है। यह वह काल है जब जनमानस में लोक-जागरण के अंकुर फूटे और इससे लोगों में आत्म सजगता के साथ -साथ आत्म अभिव्यक्ति की भावना पैदा हुई। इसका एक रूप हम स्त्री भक्त कवयित्रियों में उनकी रचनाओं के माध्यम से भी देख सकते हैं।

हिंदी क्षेत्र की बात करें तो भक्त कवयित्रियों की एक समर्थ परम्परासामने आती है। इनमें कुछ राजघरानों से संबंध रखने वाली तो कुछ सामान्य जनसमुदाय की साधक, कुछ कृष्ण के माधुर्य पर मोहित, तो कुछ राम की स्थिरता पर तो वहीं कुछ ने निर्गुण निराकार में अपने स्व को स्वाहा कर दिया तो कुछ ज्ञान की ज्योति में विलीन हो सर्वत्र प्रकाशमान हुई। पुरूषों की तुलना में नारी की भावनात्मक-कोमलता एवं अभिव्यक्ति की कलात्मकता उसे काव्य के अतिनिकट ला खड़ी करती है। वस्तुत: यह दोनों नारी स्वभाव के प्रबल पक्ष है।

वैदिक काल में जैसे ऋषि पत्नियों के साहित्यिक योगदान की एक बड़ी परम्परारही वैसे ही हिंदी क्षेत्र में राजस्थान की भक्त कवयित्रियों की एक सुदीर्घ एवं काव्य कौशल सम्पन्न परम्पराहै। इसी परम्परामें "श्री सुन्दरकुवंरि" का नाम है। मीरा, मुक्ता की भांति ही सुन्दरकुवंरि भी भगवत्-प्रेम से ओत-प्रोत है। अन्य

साहित्यिक रचनाओं में जहां वियोग का वर्णन भी है वहीं सुन्दरकुवंरि का रचना संसार राधा-माधव की संयोगात्मक रसमय निकुंज लीलाओं में लीन प्रतीत होता है।

इनका जन्म संवत् 1791 वि. में रूपनगर कृष्णगढ़ (किशनगढ़) राठौर वंशीय महाराज राजसिंह की पत्नी महारानी बांकावती की कोख से हुआ।

प्रसिद्ध कृष्णगढ़ नरेश 'कुंवर सावंत सिंह' जो कालांतर में साहित्य भ्रमरों के मध्य भक्त 'कवि नागरीदास' के नाम से ख्यात हुए, इनके ज्येष्ठ भ्राता थे। इनकी दूसरे भाई 'बहादुर सिंह' भी थे किंतु इनकी विशेष घनिष्ठता बड़े भाई नागरीदास से ही थी।

इनका विवाह संवत् 1822 वि. में राघवगढ़ के खींची राजवंश में महाराज बलवंत सिंह के साथ हुआ। वे स्वयं काव्य रसिक थे। दूसरी ओर सुन्दरकुवंरि के पिता राजसिंह, पितामह मान सिंह, मां महारानी बांकावती (यह भी निम्बार्क संप्रदाय की सलेमाबाद पीठ से वैष्णव दीक्षा में दीक्षित थी। इन्होंने 'ब्रजदासी भागवत' नाम से श्रीमद्भागवत का ब्रजभाषा में सरस काव्य शैली में छंदोंबद्ध अनुवाद भी किया), भाई कुंवर सावंतसिंह (नागरीदास) सभी स्वयं सुसंपन्न कवि थे। इस प्रकार हम ऐसा कह सकते हैं कि काव्य रचना कौशल पर इनका पैतृक अधिकार था।

मां बांकावती एवं बनीठनी से इन्हें काव्य प्रेरणा मिली तो वहीं भाई नागरीदास की ब्रजनिष्ठा, राधा-माधव के प्रति प्रेमभाव, वृंदावन वास, सन्त वैष्णवो के प्रति प्रेमासक्ति, नित्य लीला माधुरी दर्शन का सुन्दरकुवंरि के व्यक्तित्व पर सात्विक प्रभाव पड़ा।

भाई नागरीदास ने इन्हें 'चार वर्ष' की अबोध अवस्था में निम्बार्क तीर्थ (सलेमाबाद) में विभूषित आचार्य श्री वृन्दावन देवाचार्य जी से निम्बार्क वैष्णव दीक्षा दिलवाई।

राजकीय तवारीख में भी लिखा है संवत् 1795 चैत्रसुदी 13 को बाई श्री सुन्दरकुवंरिजी को पुरोहित मयाचंद जी के पास पढ़ने को बिठाई, पांच रूपए दिए। चैत्रसुदी 14 को सलेमाबाद के 'श्रीजी महाराज' स्वामी श्री वृंदावन देवाचार्य से नाम स्मरण करवाये।

सुन्दरकुवंरि ने अपने एक ग्रन्थ 'मित्र-शिक्षा' में भी अपना परिचय देते हुए इस बात को मुक्त कंठ से गाया है-

श्रीवृन्दावन देव प्रभु, तिनकी दासित छाप।
लही वाल वय में सवहिं, उदये भाग्य अमाप ॥
श्रीप्रभुजी निज दासता छाप जबै मोहि दीन।
तव वय वर्ष चतुर्थ में, हौं जु हुती मति हीन ॥

(मित्र शिक्षा))

सुन्दरकुवंरि द्वारा बारह ग्रन्थों की रचनाओं का जिक्र मिलता है जिसमें 'मित्र शिक्षा सं. 1862 वि.' नामक ग्रन्थ अज्ञात है एवं शेष ग्यारह ग्रन्थ अल्पज्ञात होते हुए भी खोजने पर सात ग्रन्थ हमें श्री सर्वेश्वर पत्रिका के श्री सुन्दरक में उपलब्ध हुए है ग्रन्थों के नाम एवं रचनाकाल कुछ इस प्रकार है-

• **नेह निधि**	**सं. 1817 वि.**
• **वृंदावन गोपी माहात्म्य**	**सं. 1823 वि.**
• **संकेत युगल**	**सं. 1830 वि.**
• **रसपुंज**	**सं. 1834 वि.**
• **प्रेमसंपुट**	**सं. 1845 वि.**
• **सार संग्रह**	**सं. 1845 वि.**
• **रंगझर**	**सं. 1845 वि.**
• **गोपी माहात्म्य**	**सं. 1846 वि.**
• **भावना प्रकाश**	**सं. 1849वि.**
• **रामरहस्य**	**सं. 1853वि.**
• **पद संग्रह तथा फुटकर कवित्त**	**सं. 1853वि.**
• **मित्र शिक्षा**	**सं. 1862 वि.**

भावना प्रकाश एवं मित्रशिक्षा इनकी रचनाओं में सबसे विशालकाय ग्रन्थ हैं।

सुन्दरकुवंरि की काव्य रचनाएं साहित्य जगत में अछूती सी रही हैं अतः मेरा प्रयास इनके द्वारा रचित अल्पज्ञात मुक्ता मणियों पर प्रकाश डाल साहित्यिक जगत में इनके साहित्यिक महत्त्व पर पुनः प्रकाश डालना है। इनके साहित्य में चित्रात्मक, संवादात्मक, विभिन्न शैलियां मिलती है जो इनके काव्य में निहित विभिन्न कला पक्षों को उजागर करती है।

श्री सुन्दरकुवंरि का पहला काव्य ग्रन्थ ' नेहनिधि' यथा नाम तथा गुण को परिभाषित करता प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ में श्रीश्यामा श्याम के अनन्य प्रेम से परिपूर्ण इस ग्रन्थ में उनकी सहज रीझ खीझ के अनंतर हास-परिहास, रति विलास कि सुन्दर वर्णन है। वहीं 'संकेत युगल' में नित्य बिहार रस विषयक एक आख्यान काव्य है। संकेत युगल में श्री प्रिया-लाल जी की लीला स्थली 'संकेत' का वर्णन है। वहीं 'रस पुंज' जैसे शीर्षक से प्रतीत होता है यह ग्रन्थ निभ्रत कुंज-निकुंज की लीलाओं का कोष है।

'प्रेमसंपुट' में प्रेम का संपुट ही नहीं दैविक युगल की लीलाओं का विशाल आगार है। इसमें एक प्राण दो देही, अष्ट सखियां, तीन करोड़ यूथेश्वरियों द्वारा सेवित नित्य विहार जिसका वर्णन नारद जी ने शौनकों से प्रेमसंपुट नाम से किया था बड़े उत्साह और उत्कर्ष सहित वर्णित है। इसकी लीला स्थली भी बरसाने के आस-पास की भूमि है।

'सारसंग्रह' सभी सारों का सार है इसमें वैष्णव, भक्त, भक्ति, भगवान् एवं उनकी प्राप्ति का मार्ग, भगवद् भक्तों की रहनी, कहनी, उनके विविध लक्षण, दशा, साम्प्रदायिक तत्त्व सभी का समावेश है।

कवियित्री का कथन है कि उन्होंने इसे समस्त धर्म तत्त्व, आचार, भक्ति, सेवा साधना और प्रेम लक्षणा भक्ति के माध्यम से श्रीराधामाधव के सहचरी परिकर में प्रवेश आदि अनेक गूढ़ रहस्य और अंतर्भेदों को व्यक्त करने हेतु इसकी रचना की है।

सब सारन को सार यह, लोनो सोधि विचार।
श्री हरि अन्तर मेव है, परम गूढ़ निरधार॥
संग्रह सार जु नाम है, ताको अर्थ सु येह।
सब सारन को सार ले, किय एकत्र अछेह॥

सार संग्रह, सुन्दरकुंवरि की वाणी, पृष्ठ 63

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्ण भक्ति परम्परा में सन्त कवयित्रियों में सुन्दरकुंवरि का अनुपम योगदान है। इसके रचे गीतों का सम्यक् सम्पादन तथा विवेचन की आवश्यकता है।

***

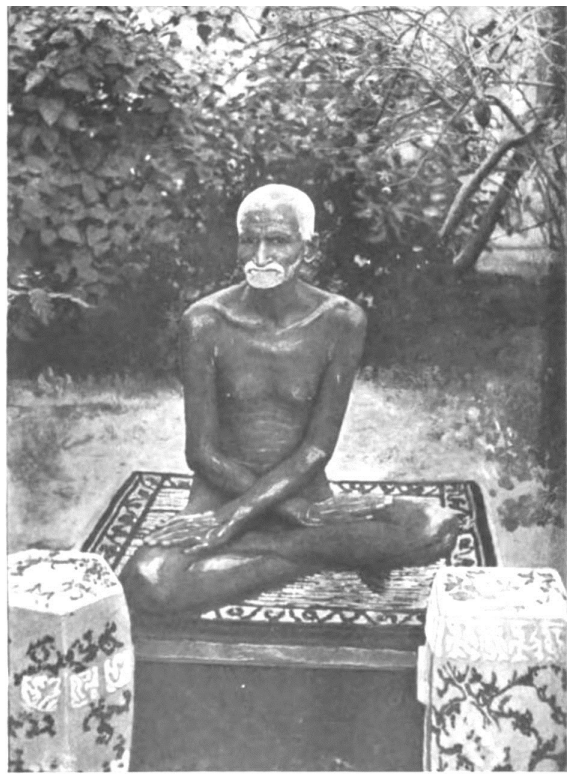

THE SANYASI BHASKARANANDA OF BENARES.

बनारस के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी भास्करानन्द सरस्वती ((1833–1899) का यह दुर्लभ चित्र **John Campbell Oman** की पुस्तक **The Mystics, Ascetics, and Saints of India** में 1903ई. में प्रकाशित हुआ था।

मिथिला के सन्तकवि

भवानाथ झा प्रसिद्ध भोमर झा

श्री विनोद कुमार झा

एम. ए. (शिक्षा शास्त्र), लेखक कवि गीतकार माइंड मोटीवेटर, लाईफ कोच ट्रांसलेटर प्रकाशक, रिटायर्ड प्रिंसिपल, शिक्षा निकेतन, हाजीपुर, बिहार। सम्पर्क : मृणाल भवन, लोहरपुर, पोस्ट - अधलोआम, बहेड़ा, दरभंगा, बिहार

मिथिला में केवल संस्कृत भाषा-साहित्य में निबद्ध ज्ञान-परम्परा ही नहीं, लोकभाषा के सन्त साहित्य की भी पुष्ट परम्परा है। खेद है कि इस दिशा में अभीतक बहुत कार्य नहीं हुए हैं। ऐसे ही एक सन्तकवि भवानाथ झा प्रसिद्ध भोमर झा हैं। ये दरभंगा जिला के रमौली गाँव के थे। प्रसिद्ध सन्तकवि लक्ष्मीनाथ गोसाँई से इनकी मैत्री थी। इनकी रचनाओं की पाण्डुलिपि दो भागों में मिली हैं, जिनमें कुल 784 पृष्ठ हैं। अनेक पृष्ठों पर चित्र भी बने हुए हैं, जिनमें से कुछ चित्र गीतों के भाव पर बने हैं तथा कुछ अन्य विषयक भी हैं। गीतों का लेखन तीन लिपियों में हुआ है- देवनागरी, मिथिलाक्षर तथा कैथी। ये तीनों लिपियाँ उन दिनों इस क्षेत्र में प्रचलित थी।

सन्तकवि भोमर झा की ये रचनाएँ उनके वंशज के संरक्षण में सुरक्षित हैं। यहाँ हमने उनके वृद्ध-प्रपौत्र श्री विनोद कुमार झाजी से आग्रह कर उनसे सूचनाएँ एकत्र की हैं जो यथावत् यहाँ संकलित हैं। यह मात्र सूचना प्रदान हेतु है।

19 वीं शताब्दी में अपनी काव्य रचना, वाचन, चित्रकला एवं जमींदारी के लिए पूरे मिथिला में प्रसिद्ध थे और निजी पालकी पर बैठकर ही यात्रा करते थे। उनके परमप्रिय मित्र तत्कालीन तंत्र-मन्त्र विद्या के स्वामी सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाई थे। उन्होंने 1850 ईस्वी में अपने गाँव में श्रीरामजानकी मंदिर की स्थापना की थी। मंदिर के भव्य भवन का निर्माण कराया था। साथ ही, कई पोखर की खुदाई करवायी। मंदिर के संचालन के लिए 25 बीघे जमीन दान में दिया और पूजा पाठ करने के लिए रूपनारायण दास को पुजारी के रूप में बहाली किया जो बाद में मंदिर के महंथ बन गये।

जीवन परिचय

सन्तकवि भवानाथ झा का जन्म 02 मई, 1838 को रमौली में ही हुआ था। इनका देहावसान भी 02 मई, 1898 को हुआ।

हाथी पर सवार राजा का चित्र

उनकी पढ़ाई-लिखाई घर पर ही हुई। जमींदार होने के कारण निजी शिक्षक से ही उन्होंने हिन्दी, मैथिली और बंगला भाषा तथा साहित्य का अध्ययन किया। वे देवनागरी, कैथी एवं मिथिला लिपि में लिखना और पढ़ना जानते थे। उन्हें किसी विद्यालय से औपचारिक शिक्षा नहीं मिली।

उनके पिताजी के पास करीब दो सौ बीघे रैयती भूमि थी और अपने समय के बहुत बड़े जमींदार थे। हर विषय के निजी शिक्षक उनके घर पर ही रहते थे।

उन्हें जमींदारी की देखरेख भी करनी होती थी, किन्तु ईश्वर के प्रति अनुराग होने के कारण गीतों की रचना करने की भी प्रवृत्ति थी। वे गृहस्थ होते हुए भी एक सन्तकवि के रूप में विख्यात थे।

साहित्य रचना

उन्होंने 1879 ईसवी में भक्तिमयी काव्य की रचना एवं वाचन मैथिली और हिंदी भाषा में करना शुरू किया। उन्होंने अपनी रचना देवनागरी, कैथी और मिथिला लिपि में लिपिबद्ध करते थे। उन्होंने दो पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ तैयार की जो मौलिक एवं अप्रकाशित हैं और इन पंक्तियों के लेखक के पास संरक्षित हैं।

1- प्रथम पुस्तक की पांडुलिपि का विवरण -

शीर्षक - मिथिला रामराग माला
भाषा - हिन्दी एवं मैथिली
लिपि - देवनागरी एवं मिथिलाक्षर
रचना वर्ष - 1879
कुल पृष्ठ- 424

इस पुस्तक में भगवान राम और सीता माता से संबंधित राग बैरबा, दोहा, राग और राधा-कृष्ण से संबंधित राग होरी लिखा हुआ है। शब्द स्पष्ट, सरल, मधुर और प्राचीन अक्षरी में है। रचना शानदार, जानदार, मजेदार और रोमांचक है।

2- द्वितीय पांडुलिपि का विवरण -

शीर्षक- मिथिला भवानाथ छंदमाला
भाषा- हिंदी, मैथिली, बंगला
लिपि- कैथी, देवनागरी
रचनावर्ष - 1880 ईस्वी
पृष्ठ संख्या-360

इस पुस्तक में पटुआ चित्रकला शैली में हाथों का चित्रण दोहा, राग और गीत के साथ किया गया है। भाषा शुद्ध सुन्दर, स्पष्ट, सरल और सहज है। रचना शानदार, जानदार, मजेदार, भक्तिमई, सामाजिक और रोमांचक है।

भाषा शैली - हिन्दी, मैथिली, बंगला भाषा में लिखित है और देवनागरी, कैथी, मिथिला लिपि में लिपिबद्ध किया गया है।

अतः उपरोक्त तथ्यों से हम कह सकते हैं कि कवि भोमर झा एक नेक, महान और प्रसिद्ध कवि और लेखक थे। इन्होंने काव्य जगत में अपना काफी योगदान दिया लेकिन उनकी पुस्तकें प्रकाशित नहीं हो सकी जिसके कारण उनका नाम और पहचान मिथिला के साहित्यिक इतिहास में दर्ज नहीं हो सका और गुमनाम साहित्यकार के रूप में अपने जीवन में रहा

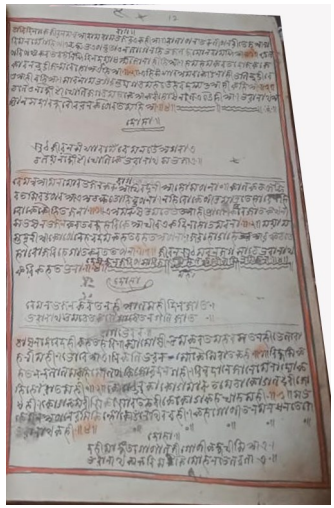

और स्वर्गवासी हो गया।

कवि भोमर झा से संबंध -

साहित्यकार विनोद कुमार झा के दादाजी, लफोदर झा के दादा जी, भोमर झा

आज इन रचनाओं का सम्पादन, शोध आदि के लिए विद्वान आमन्त्रित हैं। आशा है कि इन गीतों के प्रकाशन से मिथिला क्षेत्र के भक्ति काव्य की परम्परा का प्रकाशन होगा। साथ ही, मैथिली, हिन्दी एवं बंगला का संत-साहित्य पाठकों के समक्ष आयेगा।

***

भवानाथ झा की रचनावली से एक पद

झूठ जिवन संसार में रे मन तें अगराए।
चलए लङ्गोटी खोलिकै भवानाथ सब जाउ॥

रे मनुआ मन मोर भजन करु आखिर दुनिआ हो सपना।
कालक चक्र फिरत सिर ऊपर आए अचक जोहि चुगना।
नहि रोके पितु मातु तेहारे नहि रोके को हित जना।
ए अमरुख भम रे तत माही प्राण करे जत कखना।
सभ खन भजन करत रहु हरि के आखिर एक दिन होत सरना।
माया मस्त दुनीआ को तोरे हरदम कहत रहत अपना।
जीवन झूठ सरन जग साचे भवानाथ कवि कहत भना॥

इस पद में कवि कहते हैं कि यह संसार मिथ्या है। यहाँ पर धन संचय करना व्यर्थ है, क्योंकि अंत समय में सभ लोग अपनी लँगोटी खोल कर इस संसार से चले जाते हैं। इसलिए हरि का भजन करना चाहिए। मृत्युकाल में कोई इन्हें रोक नहीं पाते हैं। यह दुनिया माया के कारण सुन्दर लगती है आपको हमेशा सबकुछ आपना ही लगता है पर जीवन झूठा है और हरि की शरण ही सच्ची है।

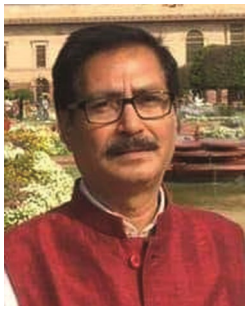

कबीरपन्थ के सन्त कवि घरभरन झा

श्री रमण दत्त झा
शिक्षा: बी. कॉम, एम बी ए., सेवानिवृत्त पदाधिकारी बिहार विधान परिषद ,पटना .

यह मात्र सूचनाप्रद आलेख है। चूँकि यह एक चौकाने वाली सूचना प्रदान करता है अतः शोधकर्ताओं के लिए महत्त्वपूर्ण है। मिथिला में इन पंक्तियों के लेखक ने बचपन में अनेक बार निर्गुण साधुओं के मुँह से संसार की निःसारता का बखान करने वाले पदों का गायन मैथिली भाषा में छन्दोबद्ध सुना है। बचपन की वे यादें अब ताजी हो जा रही हैं जब इस प्रकार से साहित्य से परिचय प्राप्त हो रहा है। यद्यपि इसकी भाषा सधुक्कड़ी है, किन्तु स्थानीय भाषा के ठेठ शब्द आ गये हैं। सम्भव है कि मिथिला में जहाँ एक ओर संस्कृत के माध्यम से ज्ञान परम्परा की दुन्दुभि बजती रही वहाँ समाज में आम जनता के बीच कबीर सम्प्रदाय के लोग भी अपना राग अलापते रहे। यहाँ अनेक कबीर-पन्थ मठ भी हैं, जिनके साहित्य को ढूढ़ना आज शेष है। तत्काल यहाँ एक संरक्षित पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में सन्तकवि घरभरन झा के ही वंशज परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

कर्महे तरौनी मूल के श्रोत्रिय ब्राह्मण पंडित अपूछ झा के पुत्र के रूप में घरभरन झा का जन्म 1840 ई. में दरभंगा जिला के अवाम ग्राम में हुआ था। इनका विवाह अपने गाँव के बगल में स्थित उजान ग्राम निवासी श्रोत्रिय ब्राह्मण पंडित हृदय नाथ झा के पुत्री के साथ हुआ। उनके आठ सन्तान थे जिनमें 3 पुत्र और 5 पुत्री थीं। सबसे छोटी पुत्री का विवाह दरभंगा के महाराज रमेश्वर सिंह से हुआ था। इनके बड़े पुत्र नरसिंह झा का देहांत युवाकाल में ही हो गया था और एक पुत्री का भी निधन हो गया था जिनका विवाह महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह से स्थिर हुआ था. दो पुत्री का विवाह मधेपुर और इन्द्रपुर ड्योढी के खण्डवला कुल के बाबू साहेब से और एक पुत्री का विवाह भटपुरा ग्राम के श्रोत्रिय ब्राह्मण से हुआ था।

बाबू घरभरन झा कबीर पन्थ के अनुयायी थे और उस पन्थ में उनका सम्मान गुरु का था। सुनने में आता है कि अपने प्रथम पुत्र के देहावसान पर वे करताल बजाते हुए श्मशान तक गये थे. मिथिलातत्त्वविमर्श में महामहोपाध्याय परमेश्वर झा ने इनका एवं इनके दो पुत्र भगवान दत्त झा एवं मनधन झा का उल्लेख किया है। उनकी लिखी पांडुलिपि जो कैथी लिपि मे करीब 100 पृष्ट में है जो कबीर भजन का प्रतीत होता है जिसकी छाया प्रति निम्न है:

सन्त कवि घरभरन झा एक भरा-पुरा परिवार छोड़ कर 1900 ई. में गोकुलवास हो गये उस समय उनके

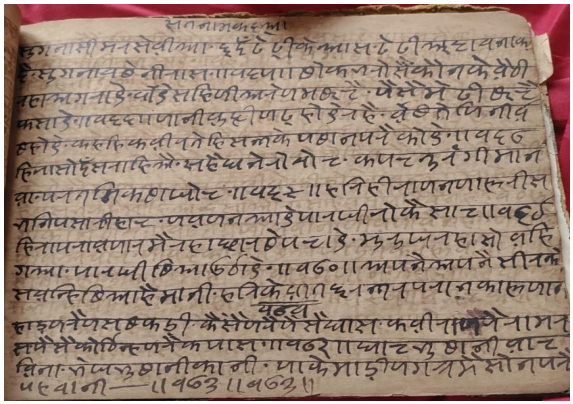

दामाद मिथिलेश रमेश्वर सिंह दरभंगा के राजगद्दी पर आसीन थे. उनके नाती दरभंगा के अंतिम महाराज डा. कामेश्वर सिंह एवं मधेपुर ड्योढ़ी के बाबू लक्ष्मीपति सिंह थे। वर्तमान में इनके एक प्रपौत्र डा. अजय नाथ झा, मिथिला विश्वविद्यालय में जन्तु विभाग में विभागाध्यक्ष हैं और एक प्रपौत्र रमणदत्त झा, सेवानिवृत्त पदाधिकारी, बिहार विधान परिषद उनके पांडुलिपि के अनुवाद और संरक्षण हेतु प्रयासरत हैं।

ऊपर प्रस्तुत पाण्डुलिपि का पाठ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसकी कैथी है। इसकी भाषा में अनेक शब्द मैथिली के हैं। कवि ने सुगना, ढेढ़ी, चनाक आदि ठेठ मैथिली शब्दों का प्रयोग किया है। इनमें संसार की निःसारता, हरि की सर्वस्वता, जीवन की क्षण भंगुरता आदि का वर्णन किया गया है। सर्वत्र वैराग्य की भावना है।

सुगना सीमर सेविआ दुइ ढेढ़ी के आस।
ढेढी टूटा चनाक दै सुगबा चलै निरास॥
लोक भरौसै कौन कै बैठी रहा अगराइ।
पीउ सहि जीअरे जम लरै पैसे मे ढीलु टैक कसाइ॥
वह दय जानी वुही जट होउ रहै वैलते पिनी बल होए।
कहहि कबीर तेहि सभक पलान परै कोइ॥7॥
हीरा सोइ सराहिऐ सहै घनेरो चोट।
कपट तुरंगी मानवा पर नर निकला खोट॥8॥
हरि हीरा जन जाहरी सभनि पसारा हाट।
जब जन आऊ पारखी रोकै साट बिहाठ॥
हीरा परा बजार मे रहा छार लेपटाइ।
मुरुख रहा सो बहु गआ पारखी लिआ उठाइ॥
अपनै अपनै सीरकै सबन्हि लिआ है मानि।
हरि केबार दुर नर परा न ++ काहु जान॥
हाड़ जरै जस लकड़ी कैसे जरै जैसे घास।
कबिरा जरै रामरस जैसे कोटिन्ह जरै कपास॥
घाट भुलानी बाट बिना मेघ भुलानी कानी।
या के माड़ी पग भ्रमै सो न परै पहचानी॥

***

भगवान श्रीकृष्ण के भक्त कवि रसखान

डा. राजेन्द्र राज

स्वतन्त्रपत्रकार एवं पूर्व प्राचार्य, जनता कॉलेज, सूर्यगढ़ा पुरानी बाजार, सूर्यपुरा, पोस्ट और थाना- सूर्यगढ़ा, जि. लखीसराय (बिहार), ईमेल- rajendraraj8140@gmail.com

भारतीय परम्परा जो सर्वांग रूप से सनातन की धारा से ओतप्रोत है, उसमें सूफी सन्तों की धारा मिली हुई है। राजा तथा राजनीति भले जो करै, कहे पर आम जन सुख -दुःख से लड़ते हुए एक-दूसरे का साथ निभाते हुए समाज में एक साथ रहे हैं। जनभाषा में सत्साहित्य का यही प्रयोजन रहा है। भारतीय आम जन के बीच घुल-मिल कर दही में शहद के समान जब इस्लाम का रंग बदला तो सूफी सन्तों की वाणी निकल पड़ी। एक ओर राम आदर्श थे तो दूसरी ओर कृष्ण आनन्द की मूर्ति बने। मध्यकाल के अनेक सन्त कवियों ने श्रीकृष्ण की इस आनन्दमयी मूर्ति का अनुसरण अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। इन सूफी सन्तों में रसखान का नाम बड़े आदर के साथ लिया जा सकता है।

पृथ्वीलोक के हिमयुग के समापन,जलवायु में परिवर्तन, इतिहास के आरंभ होने, होमो सैपियंस- आदि मानव के बाद आदिम मनुष्य के आखेट के लिए घूमते रहने, शिकार, घनघोर जंगल और पर्वतों की कंदराओं गुफाओं विशाल वृक्षों के नीचे जीवन-संघर्ष ने उन्हें अन्यत्र प्राकृतिक स्थानों के नदियों और मैदानों के किनारे रहने को बाध्य किया। पाषाणों और लोहे तथा बाद में तीरो से वन्य पशुओं के शिकार के बाद जब वे भोजन बनाना सीख गए तो सभ्यताओं का निर्माण होने लगा। सरदार ओर कबीले के लिए युद्ध प्रिय खेल था। इसी से सत्ता का विस्तार होने लगा।इसी से रोमन, मसोपोटामिया यूनानी, अरब साम्राज्य की स्थापना हुई।

उस काल में भी भारत की सभ्यता और संस्कृति उच्च शिखर पर थी और वेदों की ऋचाएं गूंज रही थी। भारत की आदर्श एवं मानवतावादी संस्कृति विकसित थी। काव्य का उदातमय स्वरूप मंत्रों में प्रतिध्वनित था। जहां लोग यायावर और खानाबदोश की स्थिति थी, वहां भारत में स्थायित्व था। पुरू अर्थात पोरस जैसे नरेश और दांड्यायन, चंद्रगुप्त के वीर सेनापतियों ने विश्वविजेता के सपने सजाने वाले सिंकदर को आत्मा की अमरता का संदेश दिया था। यूनान की भौतिकवादी सभ्यता को भारत की आदर्श एवं मानवतावादी संस्कृति का अनुभव हुआ था। अरबों के सिंध पर विजय महमूद गजनी का भारत पर आक्रमण1206 ई. में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ अमीर खुसरों

का आगमन हुआ था। आठवीं और नौ वीं शताब्दी में इस्लाम के धर्मिक विचार वालों का एक समूह था जो सूफी कहलाता था। ये वैराग्य, रहस्यवाद परमात्मा में आत्मा को मिलाने, ईश्वर-मिलन और तीव्र व गहरे प्रेम में रखने वाले होते थे। इस क्रम में मध्यकाल में भक्ति की समन्वित धारा ने भारत को सींचा। उस काल में सामंतों की विलासिता थी। व्यर्थ के आमोद-प्रमोद में राजकोष की राशि बहाई जा रही थी। किसान और निर्धन होने लगे थे।चारों ओर भ्रष्टाचार और चाटुकारिता के साथ अंधविश्वास, छल-प्रपंच और आडंबर था। ऐसे में मध्यकालीन सन्त कवियों ने ईश्वर की भक्ति के माध्यम से जन-साधारण की व्यथा व पीड़ा को उनकी ही लोक-भाषा में व्यक्त कर के परमात्मा के प्रति आस्था जगाई।

कहना नहीं होगा कि केवल हिन्दू सन्त कवियों ने ही पुनर्जागरण और पुनरुत्थान नहीं लाया, बल्कि मुस्लिम सूफी सन्तों ने भगवान श्रीकृष्ण की अभ्यर्थना में दोहे, सोरठे, कवित्त व सवैये जैसे छंदों की रचना की। ये सूफी सन्त भारतीय संस्कृति में ईश्वर के प्रति प्रेम, सेवा, त्याग, मानवतावाद, जीवन-मूल्यों पर आधारित रचना कर रहे थे। ख्वाजा मुइद्दीन चिश्ती, अमीर खुसरो आदि की परम्परामें इस मध्यकाल में मलिक मोहम्मद जायसी तथा कृष्ण-भक्त रसखान हुए, जिनका मूल नाम सैयद इब्राहिम था।पहले ये दिल्ली और इसके इर्द-गिर्द रहते थे और बाद में ब्रजभूमि में रहने लगे। स्वामी विट्ठल दास जी से उन्होंने दीक्षा ली थी।इनके जन्म की तिथि1548 ई. बताई जाती हे,जो स्पष्ट नहीं है, लेकिन1628 ई में मृत्यु हुई थी। यह मध्य काल दो चरणों -आरंभिक और उत्तर में विभक्त है। जायसी भक्तिकाल में प्रेममार्गी निर्गुणवादी कवि हैं तो रसखान भगवान कृष्ण की भक्ति-धारा के सगुणवादी सन्त कवि माने जाते हैं। उन्होंने उस समय के प्रचलित एवं लोकप्रिय छंद सवैये के माध्यम से ब्रजभाषा में रचनाएं कीं।जो प्रेम की तन्मयता भाव-विह्वलता और आसक्ति का उल्लास उनकी रचनाओं में है, वे अन्यत्र दर्शन कम होते हैं। आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य के प्रवर्तक साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने रसखान की रचनाओं से मुग्ध होकर कहा था,

इन मुसलमान हरिजनन पै, कोटिन हिन्दू वारिये।

ऐसा समर्पण-भाव भारत की सामाजिक समरसता के लिए महत्त्वपूर्ण है।

भगवान कृष्ण के रूप, लीलाओं,ब्रज की महिमा आदि का उन्होंने मनोहर व सरस वर्णन किया है। शब्दाडंबर नहीं मिलता। भगवान श्रीकृष्ण अनादि, अखंड और अनन्त हैं। जिस परब्रह्म कृष्ण का शेष नाग महादेव सूर्यदेव, गणेशजी ओर इंद्र भी निरंतर ध्यान करते हैं और वेद अनादि,अखंड के विशेषण का प्रयोग करते हैं, भगवान शंकर, शुकदेव और व्यास मुनि जैसे जिनका जप करते हैं और फिर भी उनका भेद पाने में सक्षम नहीं होते हैं, ऐसे अनादि, अखंड और अनन्त कृष्ण को बाल-रूप में पाकर अहीरों की छोरियां अर्थात गोप बालाएं छाछ के हंडिया और माखन का लोभ दिखाकर मनभावन नाच नचवाती हैं-

'सेष महेस दिनेस गनेस सुरेसहुं जाहि निरंतर ध्यावैं,
संकर संसुक व्यास रहै पचिहारि तउ पुनि पार न पावैं,
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरी छाछ पे नांच नचावैं।

गोपियां भगवान को नचाने के बाद कह उठती हैं-

बहुत ही नाच नचाहुं लला, मैं अब के फाग रचाऊं लला मैं।

भगवान कृष्ण के प्रति कैसा समर्पण है-

या लकुटी अरू कामरिया पर राज तिहूं पुर की तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आँखिन सौं ब्रज के बनबाग तड़ाग निहारौं।
कोटि करौ कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

सच्चा मनुष्य कौन है, जो भगवान श्रीकृष्ण का भक्त है। भक्त के लिए भगवान का हर चीज प्रिय है। इसकी परिभाषा रसखान निम्न सवैये में दे रहे हैं-

मानुष हौं तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरों नित नंद की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदीकूल कदम्ब की डारन॥'

श्री कृष्ण की मुरली का अलौकिक मन्द स्वर बजता है तो तो एक गोपिका उनको रिझाने व मनाने के प्रयत्न में कह उठती हैं-

काननि दै अगुरी रहिबो जबही मुरली धुन मंद बजे है।
मोहनी तानन सो रसखानि अटा चढ़ि गोधन गैहै॥
टेरि कहौ सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि...

कृष्ण की मुरली की धुन मनमोहक है।

वे धीरे-धीरे मधुर स्वर में इसे बजाएँगे तो अपनी सखि से कान में अंगुली डाल लेगी। इससे उसे वंशी का मोहक स्वर नहीं सुनाई पड़े और उनका जादू नहीं चल सके। फिर वह आनन्दसागर चाहे अट्टालिकाओं पर चढ़ कर भी अपनी मोहिनी तान बजा ले तो उस पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा। परन्तु यदि किसी भी प्रकार कृष्ण की वंशी की धुन उसके कानों में पड़ गई तो ब्रजवासी कितना भी समझाएंगे, उसका आनंद कम नहीं होगा। अपनी मां से गोपिका उनके मुख के मधुर मुसकान के सम्मोहन के बारे में कहती है कि उस सम्मोहन के जादू से बचा नहीं जा सकता। उसका सुख उससे सँभाले नहीं जाएगा। कृष्ण की लीलाओं का गान रसखान ने सवैये जैसे छंद में ही किया है। यह एक वार्णिक छन्द और इसमें 22 से 26 वर्ण होते हैं। यह ब्रजभाषा मे बहुप्रचलित छंद है। ध्वनि और लय के कारण यह कर्णप्रिय अधिक है। उन्होंने इसी पारम्परिक छन्द विधा को अपनाया तथा सिद्धि प्राप्त की। सहज, सरल और प्रवाहमय रूप में उन्होंने इस छन्द में मधुरता भर दी है। सूफियों का हृदय ले कर कृष्ण की आराधना की है।उनकी प्रमुख कृतियों में 'प्रेम वाटिका' 'सुजन रसखान' तथा 'रसखान रचनावली' है, जिनमें सवैये के साथ दोहे, सोरठे आदि हैं। ब्रजभूमि पर उन्होंने जैसे अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया है। उनकी भक्ति की गुरु-शिष्य की परम्परामें ईश्वर को पाने तथा प्रेम करने की आत्मा की पवित्रता व दिव्यता दिखाई पड़ती है।

***

सिया राम मय सब जग जानी

डॉ. अजय शुक्ला

व्यवहार वैज्ञानिक, गोल्ड मेडलिस्ट, इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स मिलेनियम अवार्ड, अंतरराष्ट्रीय ध्यान एवं मानवतावादी चिंतक, विश्व हिंदी महासभा, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राष्ट्रीय मनोविज्ञान सलाहकार प्रमुख, अखिल भारतीय हिंदी महासभा, नई दिल्ली, भारत, प्रबंध निदेशक, आध्यात्मिक अनुसंधान अध्ययन एवं शैक्षणिक प्रशिक्षण केंद्र, देवास– 455221 , मध्य प्रदेश।

भारतीय मानस में श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में स्थापित रहे हैं। इतिहास की बात करें तो बौद्ध जातक के गाथा भाग में, जो बुद्धकाल का साहित्य माना जाता है, उसमें भी श्रीराम की राज्य अवधि 16 हजार वर्ष की अलौकिकता से युक्त है। यह श्रीराम के विषय में भारतीय जनमानस को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त है। वही परम्परा हमें मध्यकालीन सन्त-साहित्य में भी मिलती है। 'सियाराममय सब जग जानी' केवल एक सम्प्रदाय विशेष का उद्घोष नहीं अपितु समाज की यथास्थिति की अभिव्यक्ति है। आधुनिक काल में युवा चरित्र-निर्माण में इस अभिव्यक्ति का प्रयोग आत्मकल्याण तथा समाज कल्याण के लिए किया जा रहा है। लेखक का मानना है कि श्रीराम के सहारे जिस अद्वैत की बात हम सिद्धान्त रूप से कर रहे हैं, उनसे हम वर्तमान युवा पीढ़ी का दिशा-निर्देश कर उन्हें संतुलित तथा एकीकृत कर सकते हैं। लेखक ने व्यावहारिक रूप से इन कार्यों का परिणाम देखा है।

"भारतीयता की पृष्ठभूमि में भारतीय आत्मा द्वारा "सर्वधर्मसमभाव" के उद्घोष को विराटता के सानिध्य में "बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय..." की संस्कृति के माध्यम से संपूर्ण मानवता को सुखी बनाने के सन्दर्भत प्रसंग में "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया" के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुए संपूर्ण विश्व को ही "वसुधैव कुटुम्बकम्" की गरिमा के विहंगम स्वरूप में स्वीकार कर लेता है जिसमें विश्व गुरु भारत, द्वारा धर्म ग्रन्थों से आलोकित "सिया राम मय सब जग जानी : करहु प्रणाम जोरी जुग पानी" का महानतम संदेश समाहित रहता है।

शुभ भावना एवं शुभ कामना के आत्मगत स्वरूप द्वारा सर्वगुण सम्पन्नता की उच्चता का निर्माण, अंत:करण में आत्महित से आरंभ होकर सर्वमानव आत्माओं के उन्नयन और उत्थान हेतु निरंतर गतिशील रहता है। आत्मगत समभाव की सुखद परिणिति, मानव जीवन शैली की गतिशीलता के रहस्य को उजागर करती है जिसमें गुणात्मक परिवर्तन एवं परिवर्धन हेतु राजयोग द्वारा आध्यात्मिक पुरुषार्थ की उपयोगिता को संपूर्ण, समादर भाव से आत्मिक परिष्कार हेतु आत्मसात किया जाना आवश्यक होता है। आत्मज्ञान की बोधगम्यता में सत्य-दर्शन की स्वाभाविकता, आत्मिक सम्पन्नता का बहुमुखी स्वरुप होता है जिसमें 'आत्मगत स्वभाव की सहजता एवं सरलता, सामाजिक समरसता के माध्यम से निरंतर

प्रवाहित होती रहती है।"

आत्मज्ञान अभ्युदय की नैसर्गिक अनुभूति :

दिव्य गुणों से एवं शक्तियों से सुसज्जित मानव आत्माएँ सदा आत्मज्ञान के अभ्युदय की नैसर्गिक अनुभूति से गतिशील रहती हैं और अर्न्तमुखी अवस्था के लिए पुरुषार्थ करते हुए राजयोग का अनुकरण करके मौन स्वरूप में परिवर्तित हो जाती हैं। जीवन में आत्मज्ञान के प्रस्फुटित स्वरूप से चेतना की चेतनता को संपूर्ण संचेतना की व्यापकता के साथ अनुभव किया जा सकता है जिसमें निमित्त, अकर्ता रूप का ज्ञायक भाव ही उपस्थित रहता है जो आत्मानुभूति की स्वतंत्रता को प्रतिपादित करता है। मनुष्य जन्म की सौभाग्यशाली स्थिति को सामर्थ्यवान अवस्था में परिणित करने हेतु आत्मबल का सहारा लिया जाता है जो आत्मिक शक्तियों की उपयोगिता को मन, वचन एवं कर्म के सात्विक स्वरूप से आत्मसात करने के प्रबल पुरुषार्थ में सुनिश्चित किया जाता है। आत्मज्ञान के अभ्युदय होने पर आत्मिक बोधगम्यता का परिवेश अभिवृद्धि को प्राप्त होते हुए, आत्मानुभूति के वृहद् परिदृश्य की ओर गतिशील होता है जहां से अतीन्द्रिय सुख एवं शान्ति की गहन अनुभूति, जीवात्मा द्वारा किया जाना सहज हो जाता है। जीवात्मा जब स्वयं को स्वानुभूति के रहस्यमयी स्वरूप में प्राप्त कर लेती है तब उसकी धन्यता का पक्ष आत्मानंद के संदृश्य परिलक्षित होने लगता है और वह आत्मानुभूति से परमात्मानुभूति की ओर अग्रसर हो जाती है।

सत्य दर्शन का आध्यात्मिक दृष्टिकोण :

जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, सत्यं वद, धर्म चर" का अनुष्ठान करते हुए जब मानव जाति गतिशीलता की ओर अभिमुखित होती है तब 'सत्य दर्शन' का अलौकिक स्वरुप मानवीय संवेदनशीलता के रूप में प्रस्फुटित होता है। आत्मगत स्थिति की वास्तविकता को उसके मूलभूत अस्तित्व गुण अजर, अमर, अविनाशी, अचल, अडोल एवं स्थितप्रज्ञ के नैसर्गिक रूप में ही स्वीकारना सत्य दर्शन के प्रति श्रद्धावान होने की परिणिति है जिसमें आत्मा के स्वमान, स्वरूप एवं स्वभाव के अनुसार जीवन के ब्यावहारिक पक्ष को पूर्णत: आत्मसात् करने की जीवन्तता सन्निहित रहती है। सत्य दर्शन का आध्यात्मिक दृष्टिकोण सदा ही लौकिक, अलौकिक एवं पारलौकिक स्वरुप के मध्य निर्धारित अन्तराल को मान्यता प्रदान करता है और स्वाध्याय में प्रमुख एवं गौण के अंतर्गत 'भेद-विज्ञान' का अनुपालन करते हुए आत्म तत्त्व का विश्लेष्णात्मक अध्ययन आत्म-कल्याण के सन्दर्भ तथा प्रसंग में किया जाता है। आत्मिक भाव, भासना के सानिध्य में निज, निधि-निजानंद के मंगल स्वरूप की अलौकिक चेतना सत्यम्, शिवम् तथा सुन्दरम् की पारलौकिक विराजता में सत्, चित्, आनंद अर्थात् सच्चिदानंद की अनुभूति में सम्बद्ध हो जाती है।

'सत्य ही ईश्वर है, ईश्वर ही सत्य है' का आध्यात्मिक स्वरूप मानव जीवन में सदा इस रूप में व्यक्त होती है जिसे वेद में इस शब्द में कहा गया है- 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वत:' अर्थात् हे प्रभु मेरे समीप चारों दिशाओं से पवित्र विचारों के आगमन का आह्वान करते हुए पुण्यात्मा, महात्मा, धर्मात्मा एवं देवात्मा, स्वरूप में स्थापित होने का पुरुषार्थ अनवरत गतिशील होता रहे।

आत्मिक संपन्नता के व्यावहारिक परिदृश्य :

धर्म एवं कर्म के विधिवत् निर्वहन से 'उपराम स्थिति' के निर्माण की पूर्णता चेतना का परिष्कृत स्वरूप है जिसमें जीवात्मा, कर्मबन्धन से मुक्त होकर आत्म वैभव की सत्यता का सहज अनुभव करती है। जीवन में कर्मयोग सम्पादित करते हुए स्वयं को

आध्यात्मिक पुरुषार्थ की शक्ति से सदा, कर्म के संबंध से सुरक्षित रखने की उच्चतम प्राप्ति आत्मा के कर्मातीत अवस्था का सुखद परिणाम है जो आत्मिक सम्पन्नता के स्थायित्व को प्रतिपादित करता है। अव्यक्त स्वरूप की आत्मिक उपलब्धि जीवन की सर्वोच्चता का जीवंत प्रमाण है जो राजयोग से मौन की ओर गतिशीलता को सुनिश्चित करके 'आत्मा की सम्पूर्ण पवित्रता' के व्यावहारिक परिदृश्य को स्थापित कर देता है। सर्वगुण सम्पन्नता की व्यावहारिकता को आत्मानुभूति के माध्यम से सदा आत्महित की संलग्नता के सानिध्य में आत्मगत चेतना की चेतनता को बनाए रखना, जीवन के परिष्कृत स्वरुप हेतु किया जाने वाला 'आत्म केन्द्रित' स्वाध्याय होता है। जीवात्मा द्वारा प्रकृति के 'पाँच तत्त्वों को पावन' बनाने की सेवा का उत्तरदायित्व, आत्मिक सम्पन्नता के व्यावहारिक स्वरुप को 'आभारयुक्त उदारता के संवेदनशील दृष्टिकोण' से पूर्णता प्रदान करने में मददगार सिद्ध होता है।

संपूर्ण समर्पण द्वारा सर्वगुण सम्पन्नता :

जगत् में आराध्य के प्रति 'भक्ति-भाव से सम्पूर्ण समर्पण' के व्यावहारिक उदाहरण दुर्लभ स्वरूप में विद्यमान है जिसका अध्ययन एवं विश्लेषण करने से भक्तिकालीन सभ्यता और संस्कृति के उच्चतम आयाम 'स्वान्तःसुखाय रघुनाथगाथा' के व्यापक परिदृश्य में प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। ज्ञान की बोधगम्यता से जुड़ी यथार्थ आत्मानुभूति जब 'श्रद्धावान लभते ज्ञानम् ..' के सन्दर्भ एवं प्रसंग की विशिष्ट भूमिका के सानिध्य में संपूर्ण समर्पण द्वारा प्रस्फुटित होती है तब 'आत्मा स्वयं का ही मित्र..' बनकर आत्मिक वैभव सम्पन्नता की उच्चता प्राप्त करती है। शुभ भावना एवं शुभ कामना के आत्मगत स्वरूप द्वारा सर्वगुण सम्पन्नता की उच्चता का निर्माण, अंत:करण में आत्महित से आरंभ होकर सभी प्राणियों के उन्नयन और उत्थान हेतु निरंतर गतिशील रहता है।

आत्मज्ञान युक्त भक्ति का पवित्रतम स्वरूप :

आत्मिक समृद्धि की मंगलकारी अवस्था सदा आत्मा के गुणों एवं शक्तियों से भरपूर रहती है जिसमें लोक कल्याणकारी भाव जगत की उपलब्धिपूर्ण गरिमामयी स्वरूप की विराटता का आभामंडल स्वमेव ही चहुँ दिशाओं में व्याप्त हो जाता है। परमात्म सत्ता के समक्ष सम्पूर्ण समर्पण, आत्मज्ञान युक्त भक्ति का पवित्रतम स्वरूप है जो आत्मिक परिदृश्य के सम्पूर्ण परिवेश को सर्वगुण-सम्पन्नता' की नैसर्गिक उच्चता में रूपांतरित कर देता है। जीवन में धर्म एवं कर्म के सामंजस्य से उपजने वाले सुखद-संयोग को जीवात्मा द्वारा आत्मसात् करते हुए जब अध्यात्म-पुरुषार्थ के सन्दर्भत, गरिमामयी स्वरूप को "बड़े भाग्य मानुष तन पावा ..." की व्याख्या के सानिध्य में व्यावहारिकता के साथ चरितार्थ कर देता है तब आत्मज्ञान युक्त भक्ति का पवित्रतम स्वरूप आत्महितकारी स्वरूप में स्वयं सिद्ध हो जाता है।

आत्मगत समभाव में सामाजिक समरसता :

समाज में शांति, अहिंसा एवं पवित्रता की स्थापना में धर्म, अध्यात्म और राजयोग के अवदान को वैश्विक दृष्टिकोण से बृहत् स्तर पर स्वीकार्यता प्राप्त हुई है जिसके परिणाम स्वरूप आत्मानुभूति के द्वारा अहिंसक जीवन शैली की नैसर्गिक व्यावहारिकता आत्मगत समभाव के रूप में 'मानव समाज की समरसता' के माध्यम से प्रकट हो सकी है। जीवन की शुचिता का नैतिक धर्म, आत्मगत चेतना के प्रति संवेदनशील दृष्टिगत मनोभाव अपनाते हुए सदैव श्रेष्ठ मानव व्यवहार के योगदान की उज्ज्वल पृष्ठभूमि को संपूर्ण मनोयोग से रेखांकित करता है ताकि नैतिकता के उच्चतम मानदंड की गरिमा को बनाए रखने में मदद प्राप्त हो जाए। आत्मगत समभाव की सुखद परिणिति, मानव जीवन शैली की गतिशीलता के रहस्य को

उजागर करती है जिसमें गुणात्मक परिवर्तन एवं परिवर्धन हेतु राजयोग द्वारा आध्यात्मिक पुरुषार्थ की उपयोगिता को संपूर्ण, समादर भाव से आत्मिक परिष्कार हेतु आत्मसात किया जाना आवश्यक होता है।

जीवात्मा के सर्वांगीण विकास की सुनिश्चितता :

चेतना का परिष्कृत स्वरूप जब सत्कर्म की गतिशील प्रवृति के अनुकरण एवं अनुसरण की सत्यता को जीवात्मा के सर्वागीण विकास की सुनिश्चितता के सन्दर्भ एवं प्रसंग में सम्प्रेषित करता है तब सामाजिक समरसता की प्रमाणिकता सहज ही स्थापित हो जाती है। आत्मज्ञान की बोधगम्यता में सत्य दर्शन की स्वाभाविकता आत्मिक सम्पन्नता का बहुमुखी स्वरूप होता है जिसमें आत्मगत स्वभाव की सहजता एवं सरलता सामाजिक समरसता के माध्यम से निरंतर प्रवाहित होती रहती है।

भारतीयता की पृष्ठभूमि में भारतीय आत्मा द्वारा सर्वधर्मसमभाव के उद्घोष को विराजता के सानिध्य में "बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय" की संस्कृति के माध्यम से संपूर्ण मानवता को सुखी बनाने के सन्दर्भत प्रसंग में "सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया" के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुए संपूर्ण विश्व को ही "वसुधैव कुटुंबकम..." की गरिमा के विहंगम स्वरूप में स्वीकार कर लेता है जिसमें विश्वगुरु भारत द्वारा धर्मग्रन्थों से आलोकित "सिया राम मय सब जग जानी करहु प्रणाम जोरी जुग पानी" का महानतम संदेश समाहित रहता है।

***

लेखकों से निवेदन

धर्मायण का आगामी फाल्गुन मास का अंक अनुभूति विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। प्रायशः धार्मिक यात्राओं के क्रम में हमें अलौकिक अनुभूतियाँ होती हैं। हम किसी तीर्थ अथवा मन्दिर भ्रमण के लिए जाते हैं तो कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं, जो दीर्घकाल तक मस्तिष्क से मिटती नहीं हैं। मार्ग में अथवा मन्दिर परिसर मे कुछ ऐसे दृश्य होते हैं जो हमें भाव-विह्वल कर देते हैं। ऐसी घटनाओं के लेखन पर केन्द्रित अक निकालने के लिए धर्मायण के बहुत पाठकों ने सुझाव दिया है। हमें आशा है कि धर्मायण के पाठक तथा लेखक इस विषय पर अपना संस्मरण हमें लिखकर भेजेंगे। चूँकि यह संस्मरणात्मक होगा, अतः ये छोटे-छोटे लेख भी हो सकते हैं। आपके जीवन में कोई ऐसी अलौकि अनुभूति हुई हो तो हमें लिखकर भेजें। इस समूह के सभी विद्वान् लेखकों से निवेदन है कि महावीर मन्दिर पटना से प्रकाशित 'धर्मायण' पत्रिका के माघ मास के अंक हेतु सन्त-साहित्य पर केन्द्रित आलेख भेजें।

***

भगवान श्रीराम द्वारा अपना विराट् स्वरूप दिखाना

डॉ. शारदा मेहता
सीनियर एमआइजी-103, व्यासनगर
ऋषिनगर विस्तार, उज्जैन (म.प्र.)

इस वर्ष दिनांक 22 जनवरी की तिथि इतिहास में महत्त्वपूर्ण रही है। इस दिन अयोध्या में जन्मस्थान पर बने भव्य मन्दिर में रामलला की स्थापना हुई है और सम्पूर्ण देश तथा विदेश भी राममय हो गया है। इस अवसर पर कथावाचन की परम्परा की विदुषी डा. शारदा मेहता ने भगवान् श्रीराम के द्वारा माता कौसल्या को दिखाए गये अपने विराट् रूप का दर्शन कराया है। जिस प्रकार माता कंस के कारागार नें माता देवकी ने श्रीकृष्ण के विराट् चतुर्भुज रूप को देखकर अचम्भित होकर उनसे बालरूप मे दर्शन की अभिलाषा प्रकट की ठीक वैसा ही वर्णन सन्तकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस में किया है। इसी विराट् स्वरूप की यहाँ विवेचना की गयी है।

भगवान श्रीराम तथा श्रीकृष्ण इन दोनों ही विष्णुजी के अवतारों का विराट् स्वरूप भक्तों के लिए विषद् जिज्ञासा का विषय रहा है। त्रेता युग में श्रीराम ने अपने प्राकट्य के साथ ही माता कौसल्या को अपना अद्भुत रूप दिखलाया। द्वापर युग में श्रीकृष्ण ने अपना विराट् स्वरूप अपने प्रिय भक्त अर्जुन को दिखलाया है। श्रीकृष्ण के विराट् स्वरूप का वर्णन हमें विश्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्-गीता के ग्यारहवें अध्याय में प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्य चक्षु प्रदान किए थे जिससे अर्जुन भगवान के विराट् स्वरूप का दर्शन कर अभिभूत हो गए थे। श्रीकृष्ण कहते हैं-

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षु: पश्य मे योगमैश्वरम्॥

हम यहाँ गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित-मानस से श्रीराम के विभिन्न प्रसंगों में उनके विराट् स्वरूप का वर्णन करने का एक लघु प्रयास कर रहे हैं। इससे श्रीरामचरितमानस का श्रद्धा भक्तिपूर्वक वाचन करने वाले भक्तों को विशेष लाभ प्राप्त होगा और हमारी होनहार नई पीढ़ी भी इससे लाभ अर्जित कर सकेगी।

जगदाधार श्रीराम चैत्र माह में प्रकट हुए-

नौमी तिथि मधुमास पुनीता।
सकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा।
पावन काल लोक विश्रामा॥[1]

भाव यह है कि चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की नौमी तिथि को मध्याह्न में न अधिक शीतलता न अधिक धूप

1 रामचरितमानस : बालकाण्ड, दोहा 190.1

ऐसे समय श्रीराम राजा दशरथजी के यहाँ अवतरित हुए। आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी, दुन्दुभी बजने लगी। देवतागण पुष्प वर्षा करने लगे और उपहार भेंट करने लगे।

माता कौसल्या ने उनका दिव्य स्वरूप देखा। साँवला रंग, चारों भुजाओं में उन्होंने आयुध धारण कर रखे थे, आभूषण और वनमाला पहन रखे हैं। विशाल नेत्र थे, शोभा के सागर थे और खर राक्षस को मारने वाले भगवान प्रकट हुए। तुलसीदासजी कहते हैं-

भए प्रकट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी।
हर्षित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रुप विचारी।
लोचन अभिरामा तनु धन स्यामा निज आयुध भुजचारी॥
भूषन वनमाला नयन बिसाला। सोभा सिन्धु खरारी॥[2]

इस दिव्य रूप को देखकर माता दोनों हाथ जोड़कर कहती हैं-

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जब अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥[3]

× × ×

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोग रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड॥[4]

भाव यह है कि माता देखती है कि भगवान के प्रत्येक रोम में माया के अनेक ब्रह्माण्डों के समूह हैं। उन्हें आश्चर्य होता है कि इस रूप में बालक राम उनके गर्भ में रहे। वे विचलित हो जाती हैं। जब उन्हें ज्ञान प्राप्त होता है तो भगवान मुस्कराते हैं। माता को समझाते हैं। माता उनसे विनती करती है कि वे अपने इस विराट् स्वरूप को त्याग दे और अपना प्रिय बाल रूप के दर्शन कराएँ।

माता फिर कहती हैं-

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रुपा।
कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा।
यह चरित जो गावहि हरि पद पावहिं ते न परहिं भव कूपा॥[5]

भाव यह है कि हे तात! इस रूप को त्याग दो। शिशु के अनुरूप चेष्टा करो वही रूप मुझे अति प्रिय है और सुखदायक भी है। ऐसे वचन सुनकर बालक रूदन करने लगा। भगवान के इस चरित्र को जो पढ़ता है वह ईश्वर का सामीप्य प्राप्त करता है और संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

अगस्त्य ऋषि के आश्रम में रामकथा चल रही थी। शिवाजी भी सती के साथ रूक कर कथा श्रवण कर रहे थे। वे वहाँ से सती के साथ कैलास पर्वत के लिए रवाना हुए। मार्ग में उन्हें सीता हरण के पश्चात श्रीराम, लक्ष्मण सीताजी को खोजते हुए वन में जाते हुए दिखलाई दिए जो साधु वेश में दण्डक वन में विचरण कर रहे थे। शिवजी मन ही मन श्रीराम के दर्शन करना चाह रहे थे। सती इस बात से अनभिज्ञ थी। शिवजी ने श्रीराम को देखा। श्रीराम ने भी शिवजी को देख लिया, परन्तु अनुकूल अवसर नहीं होने से परिचय नहीं दिया। शिवजी अति प्रसन्न हो रहे थे। सती को शंकरजी की ऐसी दशा देखकर कुछ सन्देह हुआ। उन्हें ऐसा आभास हुआ कि जिस शिवजी की सारा विश्व आराधना करता है उन्होंने राजपुत्र को सच्चिदानन्द परमधाम कहकर नमस्कार क्यों किया और इतने प्रेममग्न क्यों हो गए? श्रीराम तो विष्णु के अवतार हैं, वे भला पत्नी को वन में एक सामान्य जन की तरह क्यों खोजेंगे। सती ने शिवजी को कुछ भी नहीं कहा परन्तु शिवजी सती की मन की स्थिति को समझ गए। उन्होंने सती को समझाया कि वे मेरे इष्ट देव श्रीराम ही हैं। समझाने पर भी सती का सन्देह दूर नहीं हुआ तो शिवजी ने कहा कि

2 रामचरितमानस : बालकाण्ड दोहा 191.छंद 1
3 रामचरितमानस : बालकाण्ड दोहा 191.छंद 2
4 रामचरितमानस : बालकाण्ड दोहा 201
5 रामचरितमानस : बालकाण्ड 191.4

तुम्हें विश्वास न हो तो तुम जाकर स्वयं श्रीराम की परीक्षा ले लो। शिवजी मन में समझ गए कि अब सती के जीवन में कल्याण नहीं है।

सती ने सीता का वेश धारण किया और श्रीराम की परीक्षा लेने का विचार किया। जिस मार्ग पर श्रीराम व लक्ष्मण चल रहे थे उसी मार्ग पर आगे आगे सीताजी के रूप में सती चल रही थी। स्त्री स्वभाव के अनुसार वह श्रीराम के सामने दुराव करना चाहती थी। परन्तु श्रीराम ने मुस्करा कर पूछा-

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामु।
पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरी कहाँ वृषकेतू।
विपिन अकेलि फिरहूँ केहि हेतू॥[6]

भाव यह है कि श्रीराम ने प्रणाम किया। पिता सहित अपना नाम बताकर परिचय दिया और शिवजी कहाँ है ऐसा पूछा, यह भी कहा कि जंगल में अकेली क्यों घूम रही हैं।

श्रीराम के इन शब्दों को श्रवण कर सती डर कर चुपचाप शंकरजी के पास आ गई। मार्ग में उन्हें सीताजी सहित श्रीराम लक्ष्मण दिखाई दिए। इससे वह श्रीराम का सच्चिदानन्द रूप देख सके और सती की बैचेनी दूर हो जाए और वह प्रकृतिस्थ हो जाए। वह आगे बढ़ रही थी। मार्ग में जब-जब सती ने पीछे मुड़ कर देखा उन्हें हर बार श्रीराम लक्ष्मण और सीताजी दिखाई दे रहे थे। यह प्रभु की लीला थी। सती ने यह भी देखा कि ब्रह्म, विष्णु और शिव श्रीराम की वन्दना कर रहे हैं। सती को ब्रह्माजी और लक्ष्मीजी भी दिखाई दीं। सती ने भगवान के सभी चराचर जीव भी देखे। सती श्रीराम के इस स्वरूप को देखकर घबरा गईं। वे मन ही मन श्रीराम की वन्दना कर शिवजी के पास पहुँची।

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी।
कछु न दीख तहं दच्छकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा।
चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥[7]

शिवजी ने सती का सम्पूर्ण चरित्र ध्यान लगा कर देख लिया। सती ने उनसे दुराव किया है। वे सम्पूर्ण घटनाक्रम जान गए। सती ने सीता का वेष धारण किया था, यह जान कर शिवजी को बड़ा विषाद हुआ। सती मन में यह समझ गईं मैंने शिवजी से जो कपट किया वह वे जान गए हैं-

जलु पय सरिस बिकई देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥ 57(ख)[8]

भावार्थ यह है कि प्रीति की रीति देखिये कि जल भी दूध के साथ मिलकर दूध के भाव बिकता है परन्तु कपट रूपी खटाई पड़ते ही दूध फट जाता है। उसका स्वाद जाता रहता है।

शिवजी ने सती का त्याग कर दिया और अखंड समाधि लगा दी। सती ने श्रीराम का मन ही मन स्मरण किया और उनसे मृत्यु का वरदान माँगने लगी कि मेरा यह देह छूट जाए।

काकभुशुण्डीजी को भी श्रीराम ने अपना विराट् रूप दिखलाया। काकभुशुण्डीजी कहते हैं जब अवधपुरी में रामजन्म हुआ तो मैं वहाँ गया और वहाँ पांच वर्ष तक रहा। श्रीराम मेरे इष्टदेव हैं। मैं उनकी बाललीलाओं को देखकर आनंदित होता हूँ। काकभुशुण्डी और शंकरजी मानव रूप में रामजन्म के उत्सव में अयोध्या में सम्मिलित हुए थे। किसी भी व्यक्ति को इस रहस्य की जानकारी नहीं थी। हम दोनों ने अयोध्या में राम-जन्मोत्सव देखा कि किस प्रकार राजा दशरथ आनन्द मग्न होकर अयोध्यावासियों को दान दे रहे थे। हाथी, घोड़े, सोना, हीरे, मोती, गाय तथा कीमती वस्त्रादि दिए जा रहे थे और सभी लोग नवजात शिशुओं (श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न) को दीर्घायु होने का आशीर्वाद दे रहे थे। शंकरजी गिरीजा से कह रहे थे-

6 रामचरितमानस : बालकाण्ड दोहा 52.4
7 रामचरितमानस : बालकाण्ड दोहा 54.4
8 रामचरितमानस : बालकाण्ड दोहा 57 (ख)

औरउ एक कहऊ निज चोरी।
सुनु गिरिजा अति दृढ़मति तोरी॥
काक भुसुंडि संग हम दोऊ।
मनुज रूप जानहु नहीं कोऊ॥[9]

काकभुशुण्डी कहते हैं कि वे बाल्यावस्था में जहाँ-जहाँ आँगन में श्रीराम घूमते थे वहाँ-वहाँ मैं भी उनके समीप उड़ कर जाता था। आँगन में पड़े हुए उनके भोजन के झूठन को मैं खाता था-

जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाऊँ॥57. क[10]

भगवान राम बाल्यावस्था में महल के आँगन में कौआ रूपधारी काकभुशुण्डीजी के साथ खेलते, किलकारी करते हुए मुझे पकड़ने दौड़ते, मैं भाग जाता तो मुझे पुआ दिखाते। कौआ उनके चरण स्पर्श करने जाता तो वे पीछे मुड़ मुड़ कर देखते हुए भाग जाते। एक दिन की बात है कि बाल रूप श्री हरि घुटने-घुटने चलते हुए कौआ को पकड़ने के लिए दौड़े उनका हाथ आगे की ओर बढ़ा हुआ था। कौआ आकाश में दूर जा रहा था। काकभुशुण्डी कहते हैं कि मैं पीछे देखता तो मुझे वहाँ वह हाथ बार-बार दिखलाई देता। मैं ब्रह्मलोक गया तो मैंने पीछे मुड़ कर देखा तो वहाँ भी श्री रघुनाथजी का हाथ दिखा। हमारा दो अंगुल का ही फासला था। मैं यह देखकर भयभीत हो गया-

ब्रह्मलोक लगि गयऊँ मैं चितयऊँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भजहि मोहि तात॥[11]

भयभीत होने पर पक्षीराज ने आँखें बंद कर ली। जैसे ही उन्होंने आँखें खोली अपने आपको उन्होंने अयोध्या में देखा। पक्षीराज बालक राम के मुँह में प्रवेश कर गए। उन्होंने बालक राम के उदर में अनेक ब्रह्माण्ड के समूह देखे। वहाँ अनेक लोक थे और सब की रचना भी विचित्र थी। वहाँ अगणित तारागण थे। सूर्य, चन्द्रमा, लोकपाल, पर्वत, भूमि आदि अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएँ थीं, वन थे, समुद्र, नदी, तालाब थे, देवता, नाग, सिद्ध, किन्नर आदि जड़चेतन सभी थे। तुलसीदासजी कहते हैं-

उदर माझ सुनु अंडज राया।
देखेऊँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया॥
अति विचित्र तहँ लोक अनेका।
रचना अधिक एक ते एका॥2॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा।
अगनित भूधर भूमि बिसाला॥
अगनित लोकपाल जम काला।
अगनित भूधर भूमि बिसाला॥3॥
सागर सरि सर विपिन अपारा।
नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर।
चारि प्रकार जीव सचराचर॥4॥[12]
जो नहि देखा नहि सुना जो मनहूं न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेऊँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥80॥ क[13]

इस प्रकार काकभुशुण्डीजी एक-एक ब्रह्माण्ड में सौ-सौ वर्ष तक रहे। सभी के विभिन्न रूप देखे पर श्रीराम का स्वरूप मुझे सभी जगह एक-सा ही दिखाई दिया। मेरी व्याकुलता देख कर श्रीरामचन्द्रजी हँस दिये जिससे मैं उनके उदर से बाहर आ गया। इस प्रकार श्रीराम का विराट् स्वरूप काकभुशुण्डीजी ने देखा। श्रीराम ने उन्हें वर माँगने का कहा तो उन्होंने भगवान के चरणों में भक्ति देने का वरदान माँगा-

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिन्धु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥84॥ख[14]

इस प्रकार हम भगवान् श्रीराम के अवतरण के समय उनका विराट् रूप का दर्शन तुलसीदासजी के शब्दों में पाते हैं।

***

9 रामचरितमानस : बालकाण्ड दोहा 195.2
10 रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड 75.क
11 रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड दो 79.क
12 रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड दोहा 79-ख
13 रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड दोहा 80 (क)
14 रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड 84 (ख)

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(जनवरी, 2024ई.)

अयोध्या के अमावा राम मन्दिर की ओर से सोने का तीर-धनुष

9 नवंबर 2019 को श्रीराम जन्म भूमि के पक्ष में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला आते ही महावीर मन्दिर की ओर से राम मन्दिर निर्माण में 10 करोड़ रुपये की सहयोग राशि देने की घोषणा हुई थी। इस राशि में से 2 करोड़ रुपये की अंतिम किश्त 19 जनवरी को श्रीराम जन्म भूमि मन्दिर निर्माण समिति के अध्यक्ष नृपेन्द्र मिश्र को सौंप दी जाएगी। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि 2020 में जिस दिन श्रीराम जन्म भूमि तीर्थ क्षेत्र ट्रस्ट का खाता खुला था, उसी दिन महावीर मन्दिर की ओर से दो करोड़ रुपये की पहली किश्त दी गयी। वर्ष 2021, 2022 और 2023 में लगातार इतनी राशि दी जाती रही। अब अंतिम किश्त के रूप में 2 करोड़ रुपये की सहयोग राशि दी जा रही है। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि किसी एक संस्था के द्वारा अयोध्या में रामलला के मन्दिर निर्माण में सहयोग के तौर पर 10 करोड़ रुपये देनेवाला महावीर मन्दिर देश का पहला संस्थान है।

2.5 किलो का स्वर्णजड़ित कोदंड

आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि के निकट जिस अमावा राम मन्दिर परिसर में महावीर मन्दिर की ओर से राम रसोई चलायी जा रही है, उसके द्वारा रामलला को सोने का तीर-धनुष भेंट किया जाएगा। अमावा राम मन्दिर न्यास के सचिव के तौर पर आचार्य किशोर कुणाल स्वर्ण जड़ित तीर-धनुष श्रीराम जन्म भूमि मन्दिर निर्माण समिति के अध्यक्ष नृपेन्द्र मिश्र को सौंपेंगे। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का धनुष जिसे कोदंड के नाम से जाना जाता है, 19 जनवरी को भेंट किया जाएगा। 2.5 किलो वजन का यह तीर-धनुष तांबे के बेस पर स्वर्ण जड़ित है। चेन्नई की एक कंपनी ने विशेष रूप से इसे तैयार किया है। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि अमावा राम मन्दिर के शिखर के लिए स्वर्ण जड़ित कलश बनवाया गया। इसके लिए भारत सरकार के उपक्रम एमएमटीसी से सोना खरीदा गया था। उसमें से कलश निर्माण के बाद शेष बचे सोने से स्वर्ण जड़ित कोदंड तैयार किया गया है।

20 जनवरी से राम-रसोई दोनों पहर चलेगी

अयोध्या के अमावा राम मन्दिर परिसर में 1 दिसंबर 2019 को विवाह पंचमी के दिन से चल रही राम रसोई 20 जनवरी से दोनों पहर चलेगी। रामलला के दर्शनार्थियों के लिए यह राम रसोई पटना के महावीर मन्दिर द्वारा संचालित की जा रही है। यहाँ राम भक्तों को निःशुल्क 9 प्रकार के शाकाहारी शुद्ध व्यंजन पड़ोसे जाते हैं। बिहारी शैली में भक्तों को पूछ-पूछकर पूरे अपनत्व के साथ खिलाया जाता है। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि अभी औसतन 4 हजार लोग प्रतिदिन राम-रसोई में निःशुल्क भोजन करते हैं। अभी तक दिन का ही भोजन कराया जाता रहा है। 20 जनवरी से शाम को भी राम रसोई में भक्तों को निःशुल्क स्वादिष्ट भोजन दिया जाएगा। दोनों पहर मिलाकर भक्तों की संख्या 10 हजार प्रतिदिन तक हो सकती है। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि राम रसोई के माध्यम से महावीर मन्दिर की ख्याति भारत के कोने-कोने तक फैली है। अब रामलला के नये मन्दिर में विराजमान होने के बाद दर्शन को आने वाले देश-दुनिया के रामभक्त राम रसोई में सुबह-शाम निःशुल्क स्वादिष्ट भोजन का आनंद ले सकेंगे। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि राम रसोई के लिए न अयोध्या और न ही पटना में कोई आर्थिक सहयोग लिया जाता है। महावीर मन्दिर की आय से यह राम रसोई संचालित की जा रही है।

रामलला की प्राण-प्रतिष्ठा के दिन महावीर मन्दिर में मनेगा उत्सव

12 घंटे का अखंड कीर्तन, हलवा प्रसाद का वितरण

1100 दिए जलाए जाएंगे, 10 हजार किलो नैवेद्यम होगा तैयार

अयोध्या में नये मन्दिर में रामलला की प्राण-प्रतिष्ठा के अवसर पर महावीर मन्दिर में उत्सव मनाया जाएगा। इस दिन महावीर मन्दिर के दक्षिणी कोने पर स्थित सीता-राम की प्रतिमा के सामने सुबह 9 बजे से अखंड कीर्तन का आयोजन होगा। रात्रि 9 बजे तक रामचरितमानस से रामजन्म प्रसंग एवं अन्य रामधुन कीर्तन होगा। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि अयोध्या में राम जन्मभूमि पर भव्य मन्दिर में रामलला की स्थापना का जो संकल्प वर्षों पहले लिया गया, उसके पूरा होने पर उत्सव का आयोजन होगा। महावीर मन्दिर को फूलों से सजाया जाएगा। 22 जनवरी को दोपहर में अयोध्या में रामजन्मभूमि पर नये मन्दिर में रामलला की प्राण-प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में पटना के महावीर मन्दिर में दोपहर 2 बजे से शुद्ध देशी घी में तैयार हलवा प्रसाद का वितरण भक्तों के बीच किया जाएगा। अयोध्या में होनेवाले प्राण-प्रतिष्ठा समारोह का लाइव प्रसारण महावीर मन्दिर परिसर में लगे एलईडी स्क्रीन पर किया जाएगा। संध्या 6 बजे महावीर मन्दिर प्रांगण में 1100 दिए जलाए जाएंगे। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि लंका विजय के बाद जब मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अयोध्या लौटे थे, तब अयोध्यावासियों ने पूरे नगर में दीप जलाकर उत्सव मनाया था। 22 जनवरी को रामजन्मभूमि पर रामलला प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा वैसी ही खुशी का अवसर है। इस अवसर पर महावीर मन्दिर में पूरे उत्साह से उत्सव मनाया जाएगा। उस दिन महावीर मन्दिर में भक्तों की संभावित भीड़ को देखते हुए सुरक्षा के आवश्यक प्रबंध किए जा रहे हैं। इस अवसर पर 10 हजार किलो नैवेद्यम तैयार किया जा रहा है।

रामलला से महावीर मन्दिर का खास संबंध

रामभक्त हनुमान के दो विग्रहों वाले प्रसिद्ध महावीर मन्दिर का अयोध्या के रामजन्मभूमि से गहरा नाता रहा है। अयोध्या रामजन्मभूमि के लिए वर्षों चली कानूनी लड़ाई में महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल

ने ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत किये। इलाहाबाद हाई कोर्ट से सुप्रीम कोर्ट तक कानूनी लड़ाई में महती भूमिका निभायी। आचार्य किशोर कुणाल ने अयोध्या के इतिहास पर 'अयोध्या रिविजिटेड' नाम से दो खंडों में ऐतिहासिक पुस्तक की रचना की। यह पुस्तक इलाहाबाद हाई कोर्ट में साक्ष्य के तौर पर प्रस्तुत की गयी। सर्वोच्च न्यायालय में निर्णायक बहस के दौरान आचार्य किशोर कुणाल ने वह नक्शा बनाकर उपलब्ध कराया जिससे यह साबित हो सका कि विवादित ढांचे के बीचो-बीच रामलला का जन्म स्थान है। यह नक्शा रामजन्मभूमि के पक्ष में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के लिए निर्णायक कड़ी साबित हुआ। 9 नवंबर 2019 को रामजन्मभूमि के पक्ष में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के तुरंत बाद महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने दो महत्त्वपूर्ण घोषणाएं की। पहली घोषणा यह कि राम मन्दिर निर्माण में महावीर मन्दिर की ओर से 10 करोड़ रुपये की सहयोग राशि दी जाएगी। दूसरी घोषणा यह हुई कि रामलला के दर्शनार्थियों के लिए निःशुल्क राम-रसोई का संचालन किया जाएगा। एक दिसंबर 2019 को विवाह पंचमी के दिन से रामजन्मभूमि से सटे अमावा राम मन्दिर परिसर में महावीर मन्दिर की ओर से राम रसोई शुरू हो गयी। यहाँ अभी औसतन 4 हजार राम भक्त 9 प्रकार के शाकाहारी शुद्ध व्यंजन करते हैं। 20 जनवरी से यह राम-रसोई शाम में भी संचालित होगी, तब यहाँ देश-विदेश के औसतन 10 हजार भक्तों के प्रतिदिन निःशुल्क भोजन करने का अनुमान है। रामजन्मभूमि पर राम मन्दिर निर्माण के लिए वर्ष 2020 में रामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र ट्रस्ट का खाता खुलने के दिन ही 2 करोड़ रुपये की पहली किश्त महावीर मन्दिर द्वारा दे दी गयी। आगे प्रतिवर्ष 2 करोड़ दिए गये। 19 जनवरी को 2 करोड़ रुपये की अंतिम किश्त दी जाएगी। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल रामलला की प्राण प्रतिष्ठा समारोह में विशेष आमंत्रित अतिथि के रूप में उपस्थित रहेंगे।

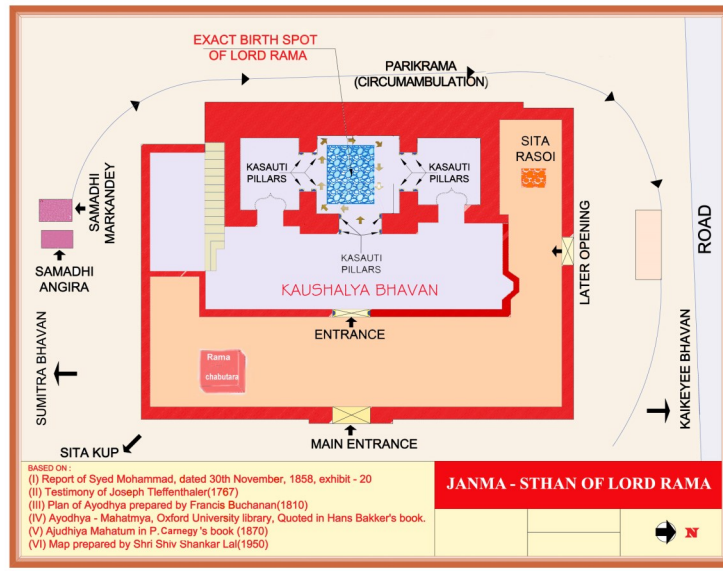

Exact Janma Sthan prepared on documentary evidences

महावीर वात्सल्य अस्पताल में नेफ्रोलॉजी विभाग शुरू

किडनी की बीमारियों का भी होगा इलाज

महावीर मन्दिर न्यास द्वारा संचालित महावीर वात्सल्य अस्पताल में अब नेफ्रोलॉजी विभाग भी शुरू हो गया है। 200 बेड के इस मल्टी स्पेशियलिटी अस्पताल में अब किडनी की बीमारियों का भी इलाज किया जाएगा। इसके साथ ही अस्पताल में डायलिसिस की सेवाएँ भी सुचारू हो गयी हैं। महावीर वात्सल्य अस्पताल के ग्राउंड फ्लोर पर नेफ्रोलॉजी विभाग का ओपीडी शुरू हुआ है। जबकि डायलिसिस सेंटर अस्पताल की चौथी मंजिल पर चल रहा है। महावीर वात्सल्य अस्पताल के डायलिसिस सेंटर में चार डायलिसिस मशीनों के जरिये एक साथ चार मरीजों का

डायलिसिस किया जा सकता है। महावीर वात्सल्य अस्पताल के अपर निदेशक और पूर्व आईएएस अधिकारी रामबहादुर प्रसाद यादव ने बताया कि डॉ. सत्यम मोहन ने अस्पताल के नेफ्रोलॉजी विभाग में अपना योगदान दे दिया है। महावीर वात्सल्य अस्पताल में प्रतिदिन सुबह 9 बजे से दोपहर 1 बजे तक नेफ्रोलॉजी विभाग की ओपीडी सेवा संचालित हो रही है। डॉ. सत्यम मोहन नेफ्रोलॉजी में डीएम हैं। इसके साथ ही उन्होंने जेनरल मेडिसिन में एमडी भी किया है। दोनों में वे गोल्ड मेडलिस्ट हैं। नेफ्रोलॉजिस्ट के हाथ ही वे ट्रांसप्लांट फिजीशियन भी हैं। डॉ. सत्यम मोहन ने बताया कि महावीर वात्सल्य अस्पताल के नेफ्रोलॉजी विभाग में डायबिटिज और हाई ब्लड प्रेशर संबंधित किडनी यानि गुर्दे की बीमारी, पेशाब का संक्रमण, गुर्दे की पथरी, एक्यूट एवं क्रॉनिक किडनी बीमारियां, किडनी बायोप्सी,पैरों में सूजन, पेशाब में खून आना जैसी बीमारियों का इलाज किया जाएगा। यहाँ होमोडायलिसिस और डायलिसिस कैथेटर पर्माकैथ की सुविधा भी होगी।

महावीर आरोग्य संस्थान में भी नेफ्रोलॉजी की प्रतिदिन ओपीडी

महावीर मन्दिर न्यास के पहले अस्पताल महावीर आरोग्य संस्थान में भी नेफ्रोलॉजी की ओपीडी सेवा प्रतिदिन शुरू हो गयी है। इसका समय दोपहर 2 से 5 बजे का रखा गया है। नेफ्रोलॉजिस्ट डॉ सत्यम मोहन इस अवधि में प्रतिदिन चिकित्सकीय परामर्श के लिए उपलब्ध रहेंगे। महावीर आरोग्य संस्थान के निदेशक डॉ एन पी सिंह ने बताया कि अस्पताल में किडनी की बीमारियों का इलाज पहले से हो रहा है। अब नियमित तौर पर विशेषज्ञ चिकित्सक की सेवा उपलब्ध हो गयी है। डॉ. एन. पी. सिंह ने बताया कि महावीर आरोग्य संस्थान में डायलिसिस की सेवाएं पहले से ही संचालित हो रही हैं। अब कुछ नये उपकरणों की खरीद भी की जा रही है।

महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि महावीर आरोग्य संस्थान और महावीर वात्सल्य अस्पताल दोनों जगह किडनी की बीमारियों का रियायती दरों पर इलाज होगा। साथ ही दोनों अस्पतालों में डायलिसिस की सेवाएं भी सुचारू हो गयी हैं। इससे मरीजों को बहुत लाभ होगा।

महावीर मन्दिर के मीडिया प्रभारी श्री विवेक विकास द्वारा प्रस्तुत

***

व्रत-पर्व

माघ, 2080 वि. सं. 26 जनवरी-24 फरवरी 2024ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा, ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

1. माघ कृष्ण प्रतिपदा शनिवार, कमलास्नानं पुण्यप्रदं, दिनाकं 07.01-2023।
2. माघ कृष्ण तृतीया उपरि चौठ सोमवार, श्रीभालचन्द्र चतुर्थी दिनांक 29-01-2024।
3. माघ कृष्ण सप्तमी शुक्रवार, श्रीरामानन्दाचार्यजयन्ती दिनांक 02-02-2024।
4. माघ कृष्ण एकादशी मंगलवार, षट्तिला एकादशी, दिनांक 06-02-2024।
5. माघकृष्ण द्वादशी उपरि त्रयोदशी बुधवार, प्रदोष त्रयोदशी व्रतं दिनाकं 07-02-2024।
6. माघ कृष्ण त्रयोदशी उपरी चतुर्दशी गुरुवार, प्रदोष चतुर्दशी व्रतं, नरक निवारण चतुर्दशी, दिनाकं 08-02-2024।
7. माघ कृष्ण आमावस्या शुक्रवार, मौनी आमावस्या, दिनाकं 09-02-2024
8. माघशुक्ल प्रतिपदा तिथि शनिवार, माघी नवरात्र का कलशस्थापन, दिनाक 10-02-2024
9. माघ शुक्ल चतुर्थी मगलवार श्रीगणेश चतुर्थी व्रत, दिनाक 13-02-2024
10. माघ शुक्ल पंचमी बुधवार, वसन्त-पञ्चमी, श्रीसरस्वती-पूजा, दिनांक 14-02-2024
11. माघ शुक्ल सप्तमी शुक्रवार, अचला सप्तमी, रथ सप्तमी, दिनांक 16-02-2024
12. माघ शुक्ल अष्टमी शनिवार, माघी नवरात्र की महाष्टमी व्रत, दिनांक 17-02-2024
13. माघ शुक्ल नवमी रविवार, माघी नवरात्र की महानवमी व्रत, दिनांक 18-02-2024
14. माघ शुक्ल दशमी सोमवार, माघी नवरात्र की विजय दशमी, दिनांक 19-02-2024
15. माघ शुक्ल एकादशी मंगलवार भौमी एकादशी, दिनांक 20-02-2024। (गृहस्थ एवं वैष्णव-दोनों के लिए)
16. माघ शुक्ल द्वादशी बुधवार एकादशी व्रत का पारण गाय के दूध से दिनांक 21-02-2024
17. माघ शुक्ल त्रयोदशी बुधवार, त्रयोदशी व्रत, दिनांक 21-02-2024।
18. माघ शुक्ल चतुदर्शी गुरुवार, चतुदर्शी व्रत, दिनांक 22-02-2024।
19. माघ शुक्ल पूर्णिमा शनिवार, स्नानदान, पूर्णिमा व्रतं, रविदास जयन्ती, दिनांक 24-02-2024

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तगण को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

महावीर मन्दिर, पटना में दि. २२ जगवरी, २०२४ को रामलला की मूर्ति की प्रतिष्ठा के दिन दीपोत्सव

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

पुनौरा धाम सीतामढ़ी के जानकी कुण्ड में महावीर मन्दिर के द्वारा प्रस्तावित जानकी उद्‌भव मन्दिर का प्रारूप

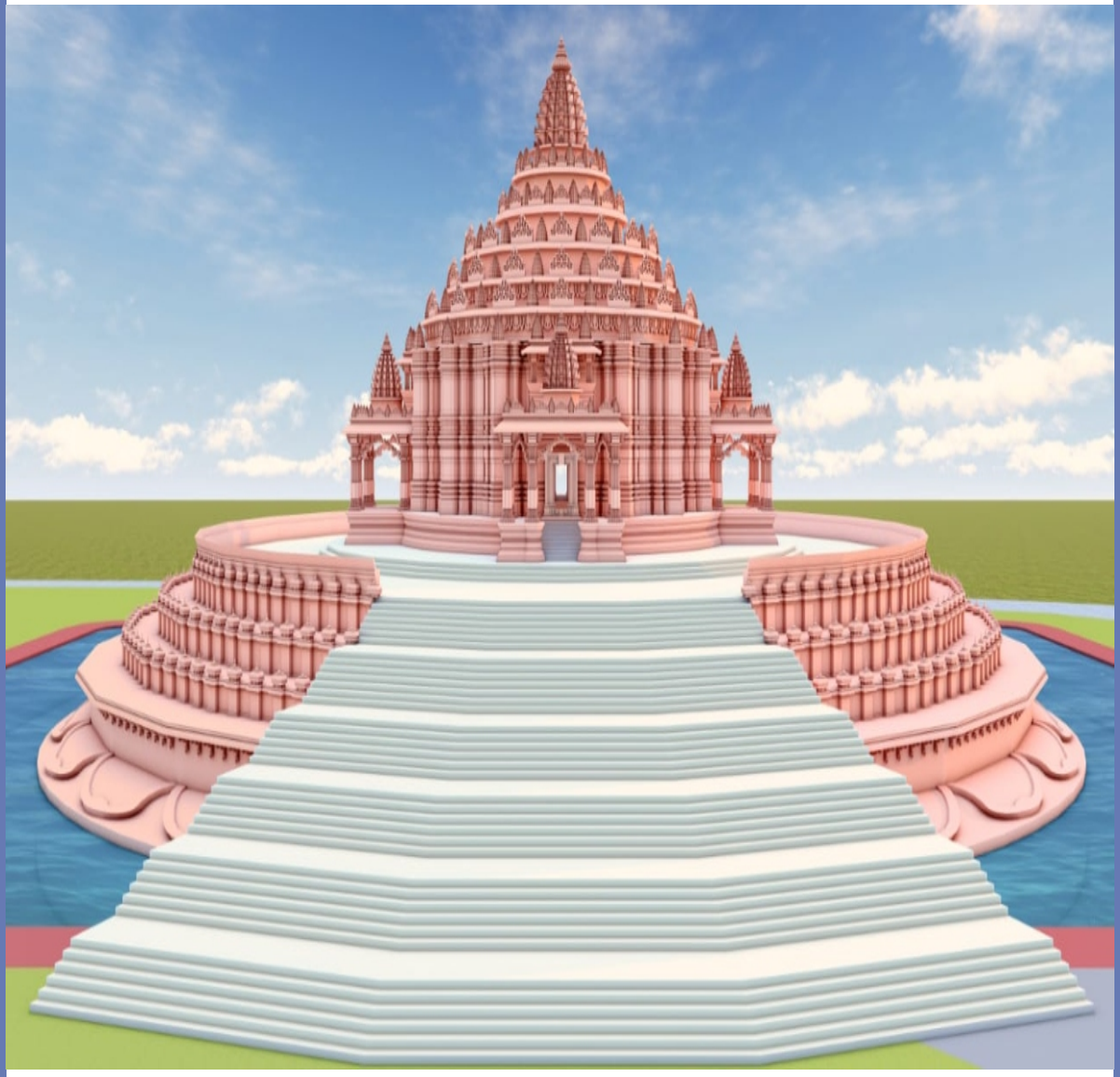

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna-org/dharmayan/ पर निःशुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।